UGC Approved Journal
Research Link

Since March 2002

An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 164, Vol - XVI (9), November - 2017, Page No. 109-110
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

भारतीय दर्शन : परम्परा

प्रस्तुत शोधपत्र में भारतीय दर्शन की परम्परा को लेकर विचार किया गया है। भारतीय संस्कृति विश्व की संस्कृतियों में श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ इसलिए है कि ये आदिकाल से प्रारंभ हुई और इसका कोई अंत नहीं है, क्योंकि चिंतन का कोई अंत नहीं होता है। दर्शन की परम्परा प्राचीन होने के साथ ही साक्ष्यों और तार्किक आधारों पर चलती आई है। दर्शन को 6 खण्डों में बांटा गया है और इसे षड् दर्शन कहते हैं। षड् दर्शन का यौगिक अर्थ है, छह दर्शन या दर्शनों का सम्प्रदाय। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, कर्म मीमांसा और ब्रह्म मीमांसा या वेदान्त। इन 6 हिन्दू दर्शनों के अर्थ में षड् दर्शन रुढ़ हो गया है। ये वेद से निकले हुए हैं। इसलिए, इनको आस्तिक दर्शन कहा जाता है। आस्तिक का अर्थ अस्तित्व से है।

डॉ.विनोद कालरा

दर्शन परम सत्य और प्रति के सिद्धान्तों व उनके कारकों की विवेचना करने वाले ज्ञान का नाम है। सत्य और यथार्थ की परख के लिए दर्शन एक ष्टिकोण है और दार्शनिक चिन्तन मूलतः जीवन की अर्थवत्ता के अन्वेषण का यथार्थ हैं। दर्शन अपने व्यापक अर्थ में तर्कपूर्ण, विधिपूर्वक एवं क्रमबद्ध विचार की कला है। अनुभव और परिस्थिति के अनुरूप इसके उद्भव के कारण ही संसार के विभिन्न महापुरुषों ने अपने–अपने अनुभवों और परिस्थितियों के अनुसार जीवन दर्शन को अपनाया।

दर्शन शब्द का अर्थ : दर्शन का अर्थ है– दृष्टि अथवा देखना। पाणिनी के व्याकरण में दर्शन शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई हैः– शिट् प्रेक्षणे धातु में ल्युट प्रत्यय लगाने से दर्शन शब्द निषन्न होता है। अतः दर्शन शब्द सामान्य देखने के रूप में अपनी अर्थवत्ता सिद्ध नहीं करता अपितु जिसमें ज्ञाननेत्रों के द्वारा देखा जाए, चिंतन और मनन करके निष्कर्ष निकाला जाए, वही दर्शन का अभिप्रेत है।

दर्शन और फिलॉसफी में अंतर : भारतीय दर्शन का इतिहास बहुत पुराना है, किन्तु फिलॉसफी के अर्थ में दर्शन शास्त्र शब्द का प्रयोग सबसे पहले पायथागोरस ने किया था। विशिष्ट अनुशासन और विज्ञान के रूप में दर्शन को प्लेटो ने विकसित किया था। मानव इतिहास के प्रारंभिक सोपानों में ज्ञान के विकास के निम्न स्तर के कारण इसकी उत्पत्ति दास और स्वामी समाज में ऐसे विज्ञान के रूप में हुई जिसने वस्तुगत जगत तथा स्वयं अपने विषय में मानव ज्ञान के सन्दर्भ योग को समन्वित किया। जैसे–जैसे सामाजिक उत्पादन का विकास होता गया, वैज्ञानिक ज्ञान के संचय की प्रक्रिया में विज्ञान दर्शनशास्त्र से अलग हो कर एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में विकसित होता गया।

प्रायः देखा गया है कि हम लोग फिलॉसफी को दर्शन का अंग्रेजी रूपान्तरण मान लेते हैं किन्तु दोनों में अंतर है। दर्शन यथार्थ है, यथार्थता का तत्व ज्ञान है जबकि फिलॉसफी विभिन्न विषयों का विश्लेषण है। दर्शन में चेतना की मीमांसा अनिवार्य है, जबकि पाश्चात्य फिलॉसफी में नहीं। जिस प्रकार मानव जीवन का चरम लक्ष्य दुरूखों से छुटकारा प्राप्त कर चिर आनंद की प्राप्ति है, उसी प्रकार सभी दर्शनों का लक्ष्य मनुष्य को संसार रूपी सागर से पार करवाकर मानव को मोक्ष प्राप्ति करवाना है। सत्य की खोज ही दर्शन का उद्देश्य है। आत्मा–परमात्मा संबंधी जिज्ञासाओं का शमन दर्शन के माध्यम से ही होता है। पाश्चात्य फिलॉसफी शब्द फिलौस और साफिया का मिश्रण है। जिसका अर्थ है, बुद्धि प्रेम। पाश्चात्य दार्शनिक संसार में प्रज्ञावान या बुद्धिमान बनना चाहता है। इसके विपरीत दर्शन में आचरण और मानस की परिशुद्धता के आधार पर ईश्वर से साक्षात्कार करने का भी आदर्श जाता है। यह आदर्श प्राच्य है पाश्चात्य नहीं। भारतीय दर्शन में परम सत्ता के साथ साक्षात्कार करने का दूसरा नाम ही दर्शन है। विचारधारा में प्राच्य दर्शन को धर्म दर्शन माना जाता है और पाश्चात्य दर्शन को भाषा सुधार तथा प्रत्ययों का स्पष्टीकरण कहा जाता है।

भारतीय दर्शन का मूल प्रतिपाद्य : मनुष्य के वैयक्तिक जीवन के सम्मान को अर्जित करने और अन्तः परिवार के लिए दर्शन अत्यन्त उपयोगी है। दर्शन के अभाव में आध्यात्मिक पवित्रता एवं आत्मिक प्रगति नहीं हो सकती। दर्शन शास्त्र ही हमें प्रमाण और अद्भुत तर्क के आधार पर अन्धकार में ज्योति प्रदान कर हमारा मार्ग दर्शन करने में सक्षम होता है। दार्शनिक चिन्तन, मनन और ज्ञान से ही मनुष्य अपने परम लक्ष्य और पुरुषार्थ की प्राप्ति कर सकता है। इसी दर्शन के माध्यम से इसके मूल प्रतिपाद्य को संक्षिप्ततः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है – लौकिक (भौतिक) और अलौकिक (आध्यात्मिक)। दर्शन सृष्टि के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक व्याख्या भी करता है और आत्मा के विषय में विशद चिंतन भी। अतः दर्शन जड़ और चेतन दोनों से सुढ़ रूप से जुड़ा है।

भारतीय दर्शन–विकास के सोपान : वेदों के जो आधारभूत तत्व बीज रूप में बिखरे दिखाई पड़ते हैं, वे ब्राह्मणों में आकर कुछ सीमा तक उभरे परन्तु कर्मकाण्ड, धार्मिक अंधविश्वास और पाखंडों की अतिशयता के कारण वे बहुत देर तक नहीं चल सके। किन्तु जिस

अध्यक्ष (हिन्दी विभाग), कन्या महाविद्यालय, जालन्धर (पंजाब)

प्रकार वेदों के तत्व में अंकुरित होकर ये उपनिषदों के रूप में खूब पल्लवित हुए, इस प्रकार दर्शनों का विकास हमें उपनिषदों में दिखाई देता है। आलोचकों ने इन उपनिषदों का आरम्भ लगभग 200 साल ईसा पूर्व स्थिर किया है। यह दर्शन बौद्ध दर्शन से भी प्राचीन है। अनेक विद्वानों ने सांख्य, योग और मीमांसा दर्शन को भी महात्मा बुद्ध से प्राचीन माना जाता है। वैशेषिक दर्शन और जैन दर्शन भी बौद्ध दर्शन से प्राचीन माना जाता है, क्योंकि जैन दर्शन में हिन्दू और बौद्ध दर्शन का कहीं भी खण्डन का विरोध दिखाई नहीं देता और महावीर जैन (जैन धर्म के प्रवर्तक) बुद्ध से प्राचीन थे। अतः जैन दर्शन का बुद्ध दर्शन से प्राचीन होना तर्क संगत कहा जा सकता है।

भारतीय दर्शनों का ऐतिहासिक क्रम निश्चित करना कठिन है, क्योंकि सभी दर्शनों का लगभग समान रूप से प्रादुर्भाव हुआ और वे विकास की दिशा की ओर प्रवृत्त हुए। शुद्ध ऐतिहासिकता के अभाव में भी इन दर्शनों का क्रमिक विकास होता रहा। अतः प्रायः सभी विद्वान इसी ऐतिहासिक आधार पर ही भारतीय दर्शन की व्याख्या करने का प्रयास करते आ रहे हैं।

वेद– भारतीय दर्शन का मूल स्रोत : भारतीय दर्शन का प्रारंभ वेदों से ही स्वीकार किया जाता है। भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति और साहित्य सभी के मूल स्रोत वेद ही हैं। अब भी धार्मिक सांस्कृतिक आयोजनों के आधार पर वेद मंत्रों का उच्चारण व गायन किया जाता है। बहुत से दर्शन समुदाय भी वेदों से ही अपना आधार और प्रमाण स्वीकार करते हैं। आधुनिक संदर्भ में देखा जाए तो हम वेदों को दर्शन ग्रंथ के अर्थ में स्वीकार नहीं कर सकते। वास्तव में वे प्राचीन भारतवासियों के संगीतमय काव्य के संकलन है। वेदों में तत्कालीन समय के भारतीय जीवन के अनेक विषयों का समावेश है। वेद मंत्रों और गीतों में अनेक प्रकार के दार्शनिक विचार भी प्राप्त होते हैं। अधिकांश भारतीय दर्शन वेदों को अपना आदि स्रोत मानते हैं। परन्तु वास्तव में ये दर्शन हैं। षड्दर्शन भी इन्हीं के अन्तर्गत आता है। कुछ दर्शन समुदाय अपने आपको बौद्धिक परम्परा से भिन्न एवं स्वतंत्र मानते हैं, वे भी किसी सीमा तक बौद्धिक विचारधाराओं से प्रभावित दिखाई देते हैं।

वेदों की रचना के सम्बन्ध में अनेक विवाद हैं। बहुत से विचारकों के मत एक से नहीं है। पश्चिमी विचारकों ने ऋग्वेद का रचनाकाल 1500 ईसा पूर्व से लेकर 2500 ईसा पूर्व तक माना है। इसके विपरीत भारतीय विद्वान ऋग्वेद का रचना समय 3000 ईसा. पूर्व से लेकर 75000 ईसा पूर्व तक मानते हैं। निस्संदेह प्राचीन काल में रचित इतने विशालकाय समृद्ध साहित्य को विकसित होते होते हाारों वर्ष लगे होंगे। आज जो वैदिक साहित्य हमें उपलब्ध होता है, वह सम्पूर्ण वैदिक साहित्य का एक लघु अंश कहा जा सकता है। वेद कोई एक साधारण सामान्य ग्रंथ नहीं है और न ही वह किसी एक मनुष्य की रचना है। वेद अपने आप में पूर्ण साहित्य है। इसकी एक विशाल परम्परा है। इसमें अनेक ग्रंथ सम्मिलित हैं। धार्मिक परम्परा में वेदों को ईश्वरीय स्वीकार किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हम उन्हें ऋषियों की रचना मान सकते हैं।

वैदिक साहित्य का विकास चार चरणों में हुआ है, इन्हें संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद कहते हैं। संहिता में मंत्रों और स्तुतियों का संग्रह होता है। चारों वेद मंत्रों की संहिताएं ही तो हैं। इनकी भी अनेक शाखाएँ हैं। यज्ञ के अवसर पर देवताओं की स्तुति के लिए इन्हीं संहिताओं के मंत्र गाए जाते है। आज भी धार्मिक व सांस्तिक अनुष्ठानों के अवसर पर इनका गायन होता है। यज्ञ और देवोपासना ही वैदिक धर्म का मूल रूप था।

प्राचीन भारतीयों के संगीतमय लोक काव्य के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं – वेद मंत्र। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों में मंत्रों की प्रधानता है परन्तु ये भी लयात्मक हैं। ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञों की विधि, उनका प्रयोवनध्उद्देश्य और फल आदि का वर्णन मिलता है। आरण्यक ग्रंथों में आध्यात्मिकता की बात की गई है। ये वानप्रस्थों के उपयोग के ग्रंथ हैं। उपनिषदों में आध्यात्मिक चिंतन की प्रधानता है।

उपनिषदों का दर्शन आध्यात्मिक है। इसका मूल ब्रह्म की साधना है। आत्मा ही मानव का वास्तविक स्वरूप है। उसका साक्षात्कार करके मनुष्य मन के समस्त बंधनों से मुक्त हो जाता है। अद्वैत भाव की पूर्णता के लिए, आत्मा अथवा ब्रह्म से जड़ संसार की उत्पत्ति कैसे होती है? इसकी व्याख्या के लिए माया की अमितचनीय शक्ति की कल्पना की गई है। वेदों का अन्तिम भाग होने के कारण इन्हें वेदान्त भी माना जाता है। उपनिषदों की शैली सरल और गंभीर है। अनुभव के गंभीर तत्व अत्यन्त सरल भाषा में उपनिषदों के व्यक्त हुए हैं। इन्हें समझने के लिए अनुभव का प्रकाश अपेक्षित है। ब्रह्म को पाना ही उपनिषदों का लक्ष्य हैं। उपनिषदों का सामान्य अर्थ बैठना है। मूल अर्थ है – शिष्य का गुरु के पास बैठना। ये उपनिषद वेद के अर्थ तक पहुँचाने वाले हैं। उपनिषदों की कुल संख्या 108 है। इसकी पाँच श्रेणियाँ है, ऋग्वेदीय–10, शुक्ल यजुर्वेदीय–19, कृष्ण यजुर्वेदीय–32, सामवेदीय–16 और अथर्ववेदीय–31.

उपनिषदों के उपरान्त पुराण आते हैं। पुराण हिन्दुओं के धर्म सम्बन्धी आख्यान ग्रंथ हैं, जिनमें सृष्टि, प्रलय, प्राचीन ऋषियों–मुनियों और राजाओं के वृत्तांत्त है। ये वैदिक काल के बाद के ग्रंथ हैं, जो स्मृति विभाग में आते हैं। भारतीय जीवन धारा में जिन ग्रंथों का महत्वपूर्ण स्थान है, उनमें पुराण भक्ति–ग्रंथ के रूप में माने जाते हैं। वेदों से उपनिषद की ओर आते हुए भारतीय मानस में पुराणों के माध्यम से भक्ति की धारा प्रवाहित हुई है। विकास की इसी प्रक्रिया और निर्गुण ब्रह्म की स्वरूपात्मक व्याख्या से धीरे–धीरे मानस अवतारवाद या सगुण भक्ति की ओर प्रेरित हुआ। पुराणों की कुल संख्या 18 है – ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, भगवत पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, वैवर्त पुराण, लिंग पुराण, वाराह पुराण, स्कन्द पुराण, वामन पुराण, धर्म पुराण, मत्स्य पुराण, गरुड़ पुराण, धर्म पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण। इन पुराणों की विशेषता यह है कि प्रत्येक पुराण में 18 पुराणों के नाम और उनकी श्लोक संख्या का वर्णन मिलता है। इन पुराणों के 22 उपपुराण हैं। भक्ति ग्रंथ के रूप में ये अत्यन्त महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

हिन्दू दर्शन परम्परा : हिन्दू धर्म में दर्शन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक दर्शनों में षड्दर्शन सर्वाधिक प्राचीन है। गीता का कर्मवाद भी इनके समकालीन है। षड्दर्शन को आस्तिक दर्शन भी कहा जाता है। ये दर्शन वेद की सत्ता को पूर्णत स्वीकार करते हैं। षड्दर्शन के अन्तर्गत न्यायदर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्यदर्शन, योगदर्शन, मीमांसा दर्शन व वेदान्त दर्शन आते हैं। इनके अतिरिक्त लोकायत तथा शैव एवं शाक्त दर्शन भी हिन्दू दर्शन के अभिन्न अंग हैं। उपनिषद काल में एक ओर बौद्ध और जैन धर्म की अवैदिक परम्पराओं का अविर्भाव हुआ है, दूसरी ओर वैदिक दर्शनों का उदय हुआ है।

<u>संदर्भ</u> :

(1) वर्मा, धीरेन्द्र (सं.) (संवत् 2015) : हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी, प्रथम संस्करण, मूल्य 20.

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link

Since March 2002

An International, Registered & Referred Monthly Journal : **Hindi Literature**
Research Link - 164, Vol - XVI (9), November - 2017, Page No. 111-112
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

नारी : बदलते परिवेश में

प्रस्तुत शोधपत्र, बदलते परिवेश में नारी की स्थिति, उसके संघर्ष, उसकी समस्याओं पर केन्द्रित किया गया है। आज का दौर सूचना-क्रांति का है। सूचनाओं के माध्यम से जो शिक्षा, समाज और समाज के विभिन्न तबकों और सदस्यों तक पहुँच रही है, उसने दुनिया की दिवारों को हिलाकर रख दिया है। अब वे सीमाएँ नहीं रहीं और चौबीसों घण्टे चकाचौंध वाले जीवन को परोसने वाले माध्यमों ने नई पीढ़ी को दूर तक प्रभावित किया है। इसमें नारियाँ पीछे नहीं है। अब वह भारतीय व अमेरिकी नारी न रहकर समय के अनुसार बदले हुए स्वरुप में अपने को ढाल चुकी है। वह समस्याओं से जूझना जानती है और अपने पाँव पर आर्थिक रुप से भी सशक्त होकर गौरव के साथ खड़ी है।

डॉ.राधिका के.एन.

प्राचीनकाल से लेकर अब तक स्त्री–पुरुष सम्बंध साहित्य–जगत में प्रिय विषय रहा है। यह केवल साहित्य में ही नहीं, चित्रकला, मूर्तिकला आदि से लेकर फिल्मों तक प्रिय रहा।[1]

नारी की हालत वैदिकयुग से ही सम्मानजनक थी। प्राचीन भारतीय नारी तीन शक्तियों (लक्ष्मी, सरस्वती, देवी दुर्गा) की अधिकारिणी थी, तभी देवी के रूप में पूजी जाती थी। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों के लिए आध्यात्मिक ज्ञान तथा दर्शनशास्त्र की शिक्षा अपेक्षित थी। धार्मिक कार्य केलिए केवल शिक्षित स्त्रियाँ ही योग्य समझी जाती थी।

स्त्री रामायण–महाभारत काल में त्याग, नम्रता, पतिसेवा आदि गुणों से युक्त गृहस्वामिनी के रूप में हुआ है। रामायण में सीता अनसूया आदि का वर्णन विदूषी के रूप में किया गया है। स्त्रियों का प्रमुख गुण कर्तव्य, आज्ञापालन और पतिसेवा ही हो गया। वह विवाह के कारण विलासी समाज में नारी उपभोग की वस्तु बनने लगी। शैलजा माहेश्वरी के अनुसार ''महाभारत–रामायण काल के बाद बौद्धकाल आया। स्त्रियों के संघ में दीक्षित होते ही धर्म का मूल रूप विकृत हो गया।'' महायान और वज्रयान में तांत्रिक साधना में नारी का दुरुपयोग किया जाने लगा। इन संप्रदायों में अलौकिक शक्तियों पति और उसका प्रदर्शन ही सिद्धि समझा गया। सिद्धि लाभ के लिए गुप्त–मंत्रों का जप, आचार–विहीन गुप्त क्रियाओं विशेषकर निम्नवर्ग की नारियों से भोग आदि को अपनाया गया। मंदिरों में चौरासी आसनों जैसी मूर्तियाँ इन्हीं की देन है। उत्तरोत्तर गिरती हुई नारी की पतनोन्मुख हौसियत का ही यह प्रतीक है।

चौदहवीं, पन्द्रहवीं शताब्दियों में जाति–पाति का बन्धन कठोर होने से स्त्रियों की दशा कठिन होने लगी। स्त्रियों की सभी समस्याओं का मूल कारण निरक्षरता, अंधविश्वास आदि थे। इसलिए ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द, पंडित रमाबाई, महात्मा गाँधी आदि सुधारकों ने सामाजिक सुधार के साथ–साथ स्त्री शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया।

बीसवीं सदी को महिला–जागरण का युग कहा जाता है। नारी शिक्षा को सुधार आन्दोलनों में प्रमुख स्थान दिया और अपने कार्यक्रमों का प्रमुख आधार महिला कल्याण को बनाया। महिला शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए प्रमुख शिक्षाशास्त्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के अथक प्रयत्न के आधार पर देश में अनेक संस्थाएँ खुल गई। देश के राजनीतिक जीवन में महिलाओं का स्थान निर्धारित करने का श्रेय श्रीमती ऐनी बेसेंट को है। मानवीय मूल्यों की स्थापना की जिम्मेदारी स्त्रियों पर ही ज्यादा होती है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, शिक्षा जानकारी या डिग्री के लिए नहीं, जीवन निर्माण के लिए जरूरी है। इससे व्यक्ति के भीतर का सर्वोत्तम विकास होता है। स्वतंत्र भारत की नारी शिक्षित हो गई। वैधानिक, प्रशासनिक, राजनैतिक, शैक्षणिक क्षेत्रों में तथा आर्थिक क्षेत्रों में भी स्वयं में गर्व करने लायक स्थिति, समान अवसर, समान वेतन तथा समान अधिकार के कारण हो गई है। राज्यपाल, राजदूत, प्रशासक, मुख्यमन्त्री से लेकर प्रधानमंत्री तक के सर्वेच्च पद तक पहुँचने में भी सफल हुई है। व्यापार, व्यवसाय विज्ञान अनुसंधान, आयोग समितियाँ, कला साहित्य सभी जगह पुरुषों के साथ चल रही है।[2]

वैधानिक दृष्टि से समाज में नारी का स्थान काफी ऊँचा करने पर भी अधिकार संपन्न शिक्षित नारी की स्थिति अब भी परिवार तथा समाज में अच्छी एवं सुधरी नहीं है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में स्त्री को सहानुभूतिपूर्ण ढंग से देखा गया था। ''नारी धरती की कल्पना है, नारी आकाश का यथार्थ है।'' इसके सिवाय नारी सेवा है। नारी वह जीव है, जो आजीवन पुरुष की सेवा में लगी होती है। नारी जहाँ सेवा में लगी होती है, उसे घर कहते हैं। यह उसकी परिणती है, यहीं उसे निष्पन्न होना है। नारी, पति की मति है और तभी वह श्रीमति है।[3]

नारी के लिए विविध नाम हैं। नारी का एक पक्ष अर्थात् पत्नी के अभिरूपों को ही लें। प्रॉविडेंट फण्ड या बीमा पालिसी में नोमिनी कर रहे, तो अर्द्धांगिनि कहें, परफ्यूम अधिक लगाती हो तो कान्ता, घर में उसी की अधिक चलती हो तो गृहस्वामिनी, घर में अधिक रहना पसंद करती हो, तो गृहिणी। तनिक घूंघट में रहती हो तो जनाना, अधिक घूंघट में रहती हो तो जोरू। गाँव छोड़ आई हो, ताकि

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), महात्मा गाँधी गवर्नमेंट आर्ट्स कॉलेज, माहि (केरल)

नागरिक ललनाओं के साथ खुलकर वैश्विक समस्याओं पर गंभीर विचार–विमर्श कर सके, तो उसे लुगाई कह लीजिए। अयोद्धयावादी हो तो भार्या, सदैव आप के बाएँ चले तो वामा, अधिक सटकर चले, तो वामांगिनि, ऑफिस से लौटे और प्रत्येक दिन सजी–धजी मिले, तो सजनी, आप आर्यपुत्र हो तो वह सहधर्मिणी, आप अधिपति हो तो वह जोरू, आप निशीथ हो तो वह तमिस्त्र, आप भर्ता हो तो वह भामिनी ![4]

लंबी मिथकीय परंपरा वाले देशों में संज्ञाएं अवसर विशेषण बनाकर ताक पर चढ़ा दी जाती है।[5]

नारियों से जुड़े सारे मिथक पहले ही टूट चुके हैं, पर जो होने वाला है, वह बहुत ही रोचक है। आज संयुक्त परिवार टूटकर न्यूक्लियर परिवार के इलक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन (पति, पत्नी और बच्चे) भी अलग–अलग हो जाते हैं, जो अपने आप में बहुत बड़ा विस्फोट है। बच्चे छात्रावासों या डे–केयर केन्द्र में और माँ–बाप अलग–अलग केन्द्रों में नौकरियों पर। भारत में भी रिमोट कण्ट्रोल परिवार कम नहीं है।

नारीवाद के आग्रह से स्त्रियों का स्नेह तत्व अब भी जीवित है। पहले स्त्रियाँ बेकारी होने का कारण आर्थिक विवशता में तडपती थीं। आज आर्थिक स्वतंत्रता है। शिक्षित होने से आत्मिक – भौतिक और नैतिक परिष्कार भी उनमें आया ही है। पुराने जमाने की अपेक्षा आज स्त्री सशक्तिकरण का बोलबाला है। 'कुटुंबश्री' के जरिए स्त्री सबल बन जाती है। इसलिए वह सभी क्षेत्रों में पूर्व की अपेक्षा आगे बढ़ रही है। असल में वह घर की चार दीवारी के भीतर से बाहर निकली है। ताकि वह उच्चतर पद हासिल होने लायक बन गई है। 'युग परिवर्तन के साथ सामाजिक मूल्य भी बदलते हैं'। यह परिवर्तन बिल्कुल स्वाभाविक है। सतियों से उपेक्षित नारी सामाजिक सुविधाएँ पाने के लिए संघर्षरत है। वह राजनीतिक और प्रशासनिक सभी क्षत्रों में पुरुष से अधिक दक्षता, कुशलता और सफलता का परिचय दे रही है। युग–युगों से पुरुष के शोषण का शिकार हुई भारतीय नारी आज अपनी स्वतंत्र पहचान बनाना चाहती है। परिवार में भी कन्या पुत्र के समान अधिकार और सम्मान की अधिकारिणी बन गई है।'[6]

आज के मशीन युग की वैज्ञानिकता ने स्त्रियों के लिए घर का काम हल्का कर दिया है। मगर अधिकारों की होड़ तथा जिम्मेदारियों ने उसे जकड़ रखा है। स्वतन्त्र भारत की नारी स्वतन्त्र है, तो घर–बाहर के सभी कार्यों के लिए स्वतन्त्र है। वह नौकरी करती है, फिर भी बच्चों के कार्यों, बैंक, बाजार, डाकखाने आदि सभी कार्यों का संभालन उसे ही करना पड़ता है। पत्नी स्वतन्त्र होते ही पति घर–बाहर के दायित्वों से मुक्त हो गए। निम्न मध्य वर्ग की कामकाजी पत्नियाँ आज तिहरी जिम्मेदारी की चक्की में पिस रही है, जिससे वह शारीरिक तथा मानसिक तौर पर गिर रही हैं। कामकाजी नारी आर्थिक दृष्टि से संतुष्ट होती है, पर अनुकूल सामाजिक वातावरण न पाने के कारण कुंठित भी है। घर, बाहर, दफ्तर, सभी जगह शंकाओं, कुदृष्टियों, कुचर्चाओं की शिकार है। नारी के माँ, पत्नी, गृहणी तथा कामकाजी रूपों की स्थिति ऐसी ही है। उसका सामाजिक व्यक्तित्व अब भी बुरा ही है।

घर में बैठी उच्च शिक्षित बेकार स्त्री नौकरी के अभाव में कुंठित जीवन व्यतीत कर रही है। वह नौकरी को ही अपना ध्येय मानती है। बाहर के काम के अलावा उसे घर के कामकाज में अकेले ही जूझना पड़ता है। वह अत्यधिक व्यस्त हो जाती है, इसलिए सामाजिकता निभाने में बाधा उत्पन्न होती है।

आधुनिक नारी शराब पीती है और बड़ी चतुराई से पर–पुरुष के सम्बन्धों को पति से छिपाने का प्रयास करती है। ऐसा परिवेश उषा प्रियंवदा की 'कितना बड़ा झूठ' कहानी में दिखाई देता है। आधुनिक नारी और पुरुषों के इस तरह के सम्बन्धों पर डॉ. भगवनदास वर्मा के शब्दों में 'नारी और पुरुष के सम्बन्ध अब अजनबी या विलक्षण नहीं, बहुत सहज, स्वाभाविक एवं यथार्थ बन गए हैं। आधुनिक नारी केवल नारी है, पुरुष की चिन्ता में जलकर मर जानेवाली सती नहीं है।''

सनातन काल से ही भारतीय समाज में परिवार का महत्व स्वीकार किया गया है। भारतीय संस्कृति 'मातृदेवो भवः पितृदेवो भवः तथा आचार्यदेवो भवः' के जरिए माता–पिता को देवता का दर्जा देती है। 'गिरवी रखी धूप' में मेहरुन्नीसा परवेज ने आधुनिक युग में परिवर्तित जीवन मूल्यों के साथ बूढ़े पिता के प्रति परिवार की बढ़ती उपेक्षा का वर्णन सजीव ढंग से किया है।

आज की पीढ़ी प्रत्येक दिशा को प्राप्त नहीं कर सकी। वह निरन्तर दमघोंटू वातावरण में रहकर अकेलापन का एहसास करती है और उस पर अपना आक्रोश प्रकट करने का चित्रण दीप्ति खण्डेलवाल की 'एक और कब्र' में है।

मोहन राकेश की कहानी में युगानुकूल समस्याओं के अंकन के साथ सामाजिक जागरूकता, पात्रों और परिस्थितियों के सम्बंधों की चित्रात्मकता, वातावरण की सजीवता, भावों की गंभीरता, गहरी अर्थवत्ता आदि पाई जाती है।[7] कथापात्र और प्रसंगों के जरिए सजीव चित्रण प्रत्यक्ष रूप से करना तथा परोक्ष रूप से समाज को चेतावनी देना साहित्यकारों का गुण है।

राकेश की कहानियों के नारी पात्र अकेलापन के बोझ से पीड़ित है। ये अतृप्ति में जी रही हैं। 'मिस पाल' की मिस पाल तथा 'सीमाएँ' की सीमा इस प्रकार की नारियाँ हैं। पति की व्यस्तता के कारण भी कभी–कभी पत्नी को अकेलापन झेलना पड़ता है। टूटते दाम्पत्य का बयान निर्मल वर्मा की 'लवर्स' तथा 'परिन्दे' कहानी में दिखाई देते हैं। 'मरीज नंबर सात' कहानी में धर्मवीर भारती ने व्यक्ति की निराशा, घुटन तथा अकेलापन का सजग वर्णन किया है। ऐसे ही राजेन्द्र यादव की 'भविष्यवक्ता', 'सिलसिला टूटना', 'तलवार पंचहजारी' आदि कहानियाँ घुटन और शून्यता तथा कुंठा से पूर्ण हैं।

अतः भिन्न–भिन्न कालों में स्त्री की सामाजिक स्थिति बदलती गई है। जिंदगी के भिन्न क्षेत्रों में जो बदलाव हुआ, उसका असर स्त्री की स्थिति पर पड़ा है। इसका जिम्मेदार कौन है ? जैसे अनेक सवाल उभर आते हैं, जिसका जवाब है, समाज की परंपरागत धारणा, जिसके कारण, नारी के प्रति देखने का परंपरागत दृष्टिकोण आज भी ज्यों का त्यों है।

<u>संदर्भ</u> :

*(1) भाषा, मार्च–अप्रैल – 2005. **(2)** माहेश्वरी, शैलजा : हिन्दी व्यंग्य साहित्य में नारी, पृ. 50. **(3)** यादव, राजेन्द्र एवं वर्मा, अर्चना (संपादक) : औरत– उत्तरकथा। **(4)** यादव, राजेन्द्र एवं वर्मा, अर्चना (संपादक) : औरत– उत्तरकथा, पृ. 198. **(5)** यादव, राजेन्द्र एवं वर्मा, अर्चना (संपादक) : औरत– उत्तरकथा, पृ. 198. **(6)** देशमुख, डॉ.रमेश : आठवें दशक की कहानी में सामाजिक मूल्य, पृ. 73. **(7)** डॉ. विद्याश्री : आधुनिक हिन्दी साहित्य में जनवादी चेतना।*

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link

Since March 2002

An International, Registered & Referred Monthly Journal : **Hindi Literature**

Research Link - 164, Vol - XVI (9), November - 2017, Page No. 113-114

ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

प्रवासी हिन्दी सिनेमा के गीत

प्रस्तुत शोधपत्र में प्रवासी हिन्दी सिनेमा के गीतों का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। प्रवासी जीवन के प्रति विशेष सम्मान बरसते हुए खास बातों का ध्यान रखा जाता है कि परम्परागत कहानी और आधुनिक तकनीक यानि अंग्रेजियत, इंटरनेट, मोबाइल आदि के साथ राष्ट्रभक्ति के तत्व, पारम्परिक भजन, आरती आदि सिनेमा गीतों में समय-समय पर देखने को मिलता है और परंपरागत सांस्कृतिक मूल्यों के साथ परिवर्तित जीवन की झांकियाँ दिखाता है। सिनेमा गीत प्रवासी भारतीयों को एक डोरी में बांधता है, क्योंकि यह पाश्चात्य आकांक्षाओं, जीवन शैली और पूर्व के मूल्यों के बीच एक तरह का संतुलन कायम करता है।

डॉ.रमा कण्डियन

उत्तर आधुनिकता ने कला एवं विचार के क्षेत्र में अतीत एवं वर्तमान के बीच संवाद को प्रोत्साह्ति करते हुए मौलिकता एवं प्रयोग के प्रति आधुनिको की प्रतिबद्धता को नकारने में अपनी अभिरुचि का परिचय दिया। उत्तर आधुनिकता सीमाहीन खुलेपन की हिमायती है। इसके प्रभाव वर्तमान जीवन के हर एक पल में देखने को मिलता है। परम्परागत मान्यताओं, मूल्यों और आदर्शों के प्रति नफरत और नयापन के प्रति आकर्षण एक फाशन बन गए। आज चाय पीने के बदले हम पेप्सी, कोक और देशी एवं परम्परागत संगीत के स्थान पर माइकल जैक्सन जैसे लोगों के नृत्य–गीत ज्यादा पसन्द कर रहे हैं।

पाश्चात्य देशों ने उत्तर आधुनिक काल में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं प्रौद्योगिक प्रेरणाओं तथा जीवन शैलियों को जीवन की सभी आयामों में अपने प्रभाव क्षेत्र में ले लिया। भारत जैसे विकासशील देश भी उसके प्रलोभन की ओर आकर्षित है। जरूर गतिशील मानव–जीवन के विकास के विभिन्न पहलुओं से सिनेमा भी अलग नहीं रही है।

उत्तर आधुनिक काल के सिनेमा गीत बीती हुई घटनाओं की क्रमागत प्रस्तुति का विरोधी है। भूत, वर्तमान एवं भविष्य काल को अलग न मानकर समानंतर मानता है। यह समाज, विवाह, परिवार, धर्म, राज्य, राष्ट्र तथा शैक्षणिक संस्था सबकी जडबद्धता का विरोधी है। आधुनिक कला वास्तविकता को उत्पादन के रूप में नहीं देखकर, वह लीलाभाव की ऐन्द्रजालिकता को वास्तविकता के रूप में रूपायित मानती हैं। भारतीय संदर्भ में उत्तर आधुनिक काल की यह प्रवृत्ति नयी नहीं है। अतीत काल में भी इस विमोहनकारी ऐन्द्रिजालिक लीलाभाव की बड़ी ही कमनीय अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।

वर्तमान सन्दर्भ में नारी अधिकारवाद को भी प्रोत्साहित करके पुरुष वर्चस्व के विमर्श के रूप में मानववादी सार्वभौम मनुष्य की आलोचना से अपने को जोड़े है। इसके साथ–साथ गीतों में दार्शनिक एवं सांस्कृतिक सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित करके मानवाधिकार, पर्यावरण, फैशन, जीवनशैली, विज्ञान एवं तकनीक की गहराइयाँ तक लाने का प्रयास भी कर रहे हैं।

आज हम जिस आत्म केन्द्रियता और कतिपय एबसर्ड मानसिकता के बीच जी रहे हैं, वह आज की संगीत में भी दिखाई पड़ती है। फिल्म के अच्छा होने में कहानी एवं एक्टर के साथ–साथ गीत एवं अच्छे संगीत का महत्व भी है।

हमारे जीवन को संगीत से अलग नहीं रख सकते। परिणाम सिद्धांत के प्रवर्तक डार्विन ने संगीत के महत्व को स्वीकार किया था। संगीत के बारे में कहा गया है कि "संगीत की कोई सीमा नहीं है, यह तो सभी सीमाओं से परे है, और संगीत जीवन में और जीवन संगात में निहित है।" प्रवास की डायरी में हरिवंशराय जी के उद्धरण है "यूनान की दन्तकथा आरफियज और यूरिडिसी के आधार पर तैयार किए गए एक आर्ट सिनेमा "आरफी" में नायक आरफियज के संगीत से ट्राय की दीवारें उठ खडी हुई थीं, उसकी पत्नी यूरिडिसी मर गयी तो अपने संगीत के बल पर यमराज को प्रसन्न कर लिया और उसने यमलोक से युरिडिसी को लौटा दिया है, लेकिन एक शर्त पर......" विश्वभर मे ऐसे संगीत के महत्व के बारे में कई कहनियाँ हैं।

सिनेमा के गीत सुनने वाले और गीतों के चित्रीकरण देखनेवाले यद्यपि उसका आस्वादन करते हैं, फिर भी उस गीत में निहित सभी आयामों यानि अर्थस्तरों परिचित एवं राग प्रभावों से नहीं होते हैं। वे अपने व्यक्तिगत मानदण्डों की कसौटी पर गीत को स्वीकार एवं अस्वीकार करते रहते हैं।

फिल्म, गीत कविता से बढ़कर बहुत कुछ और भी होता है। उसमें कविता के साथ–साथ विविध संगीतोपकरणों की ध्वनि सान्द्रता से युक्त श्रवण सुन्दर होता है, जो बड़ी मेहनत से और पूरे धन व बल

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), महात्मा गाँधी गवर्नमेंट आर्ट्स कॉलेज, माहि (केरल)

से तैयार किए जाते हैं। वे किसी घटना विशेष पर पात्रों के भाव एवं प्रभाव को अभिव्यक्त करते हैं।

सिनेमा में ध्वनि संयोजन के आगमन के साथ गीतों की आवश्यकता अधिक हो गयी है। हिन्दी सिनेमा गीतों की गुणवत्ता समय के साथ बदलती रही है। उत्तर आधुनिकता में आते–आते गीत को संगीत ने ढँक दिया है।

हिन्दी सिनेमा की आत्मा गीतों में ही बसी है। दर्शक सिनेमा देखकर बाहर निकलते समय याद करते हैं, गीतों को रेडियो और अन्य माध्यमों के सहारे यह अगली पीढ़ी को भी अंतरित हो जाता है। सिनेमा गीतों ने हिन्दी भाषा की भाषिक संरचना को प्रभावित किया है। शहरी दर्शकों को प्रभावित करने के लिए गीतों में कल्पना को हमारी सोच से भी काफी परे ले जाते हैं।

प्रवासी जीवन के प्रति विशेष सम्मान बरतते हुए खास बातों का ध्यान रखते हैं कि परम्परागत कहानी और आधुनिक तकनीक यानि अंग्रेजियत, इंटरनेट, मोबाइल आदि के साथ राष्ट्रभक्ति के तत्व, परम्परिक भजन, आरती आदि सिनेमा गीतों में समय–समय पर देखने को मिलता है और परंपरागत सांस्कृतिक मूल्यों के साथ परिवर्तित जीवन की झाँकियाँ दिखाता है।

सिनेमा गीत प्रवासी भारतीयों को एक डोरी में बाँधता है, क्योंकि यह पाश्चात्य आकांक्षाओं, जीवन शैली और पूर्व के मूल्यों के बीच एक तरह का सन्तुलन कायम करता है। इसके माध्यम से प्रवासियों को अपनी परंपरा से जुडने कोशिश करना है।

उदा : 'दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे' सिनेमा का गीत

"हाथों में पूजा की थाली, आई रात सुहागों वाली
ओ चाँद को देखूँ हाथ में जोडूँ करवा चौथ का व्रत मैं तोडूँ
तेरे हाथ से पीकर पानी, दासी से बन जाऊँ रानी
आज की रात जो मांगे कोई वो पा जाए रे
घर आज परदेशी............."

'कभी खुशी कभी गम' में भी ऐसा एक गीत है :

"बोले चूडियाँ बोले कंगना
हाय मै हो गयी तेरे साजना
तेरे बिन जियो नय्यो लग दा
मै ते मर गैय्या।"
ले जा ले जा दिल ले जा ले जा
ले जा ले जा, सोणिये ले जा ले जा.....

सिनेमा गीतों के माध्यम से हिन्दी को वैश्विक स्तर पर सम्मान प्राप्त हो रहा है। यूरोप अमेरिका और अन्य देशों के अपने दर्शकों को ध्यान में रखकर सिनेमा बनाई जाती है, दुनिया की संस्कृतियों को निकट लाने के प्रयास में इन गीतों का योगदान महत्वपूर्ण है।

'परदेश' सिनेमा के गीत में......

"लंदन देखा, पेरिस देखा
और देखा जापान
माईकल देखा, एल्पिस देखा
सब देखा मेरी जान
सारी जग में कहीं नहीं है दूसरा हिन्दुस्तान........"

सारा संसार सजी–धजी दुल्हन की तरह सुन्दर है, लेकिन हिन्दुस्तान उस दुल्हन के माथे की बिंदिया है। इस देश के अनूठेपन का कारण ही सारे प्रवासी "आई लव माय इन्डिया" गर्व से भाव विभोर होकर गा रहे हैं। 'परदेश' प्रवसियों के प्रेम–घृणा की कथा है, जो पश्चिम के सुखोपभोग में भी आस्था बनाकर लड़की के परम्परागत उच्च मूल्य दिखाते हैं। औरतों को पूजा की वस्तु समझा जाकर समाज का ऐसा लक्षण बताना है, जो सामूहिक स्मृति और बदलाव के ऐतिहासिक द्वन्द्व में फँसा भूमण्डलीकरण के एकाकीपन का खतरा महसूस कर रहा है।

हिन्दी जानने–समझनेवाले हिन्दीतर भाषी देशी–विदेशी हिन्दी गीत का आस्वादन करके जाने–अनजाने हिन्दी को दुनिया की प्रथम सर्वाधिक व्यवह्यत भाषा के रूप में आगे बढ़ाया है।

उन्नीसवीं सदी का समय हिन्दी सिनेमा के आर्थिक उदारता का था। प्रवासी भारतीयों का महत्व बढ़ गया था। विदेशों में बसने, हवाई यात्राएँ, महँगी गाड़ियाँ, इत्यादि नौजवानों के सपने बन गए। ताल, परदेश, दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे आदि फिल्म गीत इसके सबूत हैं। सिनेमा में वास्तविकता को दिखाने की बजाय दर्शकों के मनोरजंन करने का प्रयास कर रहे हैं।

बाजारीकरण, भूमण्डलीकरण और वैश्विक व्यापार की लालसा फिल्मकारों पर भी दिखाई देती है। सूफी प्रभावित संगीत मिलाकर 'ताल' सिनेमा की नायिका सफल कामकाजी स्त्री के रूप में दिखाई गयी है। तनावग्रस्त नायिका के गीत में कुछ खूबसूरत दृश्यों को दिखाया गया है।

दिल ये बेचे वे, रस्ते पे नैन वे,
जिन्दरी बेहाल है, सुर है न ताल है,
आज सावरिया, आ आ आ आ,
ताल से ताल मिला ओ, ताल से ताल मिला......

बीसवीं सदी तक आते–आते हिन्दी फिल्मी गीतों में सूचना और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्रान्ति का दौर आ गया। नायक और नायिका खुलकर अंग प्रदर्शन कर रहे थे। इसके अलावा तकनीक का सहारा लिया जा रहा था। हिन्दी गीत के वर्तमान समय वैश्विक परिप्रेक्ष्य में आर्थिक मंदी से जूझने और उबरने के बीच का समय है। "पैसे लो लेकिन सर्विस अच्छी दो" इस समय की आम राय है। नये सिरे से 3 डी फिल्मों क नया दौर शुरू हुआ। तीन घंटे की फिल्म में दर्शकों का पूरा मनोरंजन होना चाहिए। आइटम सांग सिनेमा के अनिवार्यता सी बनने लगी।

'धूम' में – ***"इश्क इश्क करन है करलो***
इश्क में जीने मरले
इश्क इश्क है सबसे प्यारा......"

जो भी हो, आजकल संगीत में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। पॉप म्यूजिक आदि के प्रचलन ने विविधता एवं गति प्रदान की है। मानव अपने एकाकीपन, तनाव, उबकाई आदि से दूर रहने के लिए यह गीत एक सहारा है तो जाने दो इसे आगे और क्या?...

संदर्भ :

(1) राजु, डॉ.एस : गद्य के विविध आयाम, बागलकोट।
(2) उपाध्याय, डॉ. करुणाशंकर : पाश्चात्य काव्य–चिंतन।
(3) इंटरनेट।

UGC Approved Journal
Research Link

Since March 2002

An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 164, Vol - XVI (9), November - 2017, Page No. 115-116
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

एक और मंटो - एस.अहमद

प्रस्तुत शोधपत्र में रायपुर जिले के जनसम्पर्क विभाग में फोटोग्राफर एस.अहमद की रचनाओं को लेकर लिखा गया है। उनकी रचनाएँ मंटो से प्रेरित है और काफी कुछ उनकी तरह ही कहती हैं। उनकी कहानियाँ बहुत कुछ सोचने के लिए मजबूत करती हैं, जो आमतौर पर लोग नहीं सोचते। जिस तरह मंटो की कहानियों में विभाजन के दौरान आम लोगों के दुःख-दर्द का चित्रण है, बिलकुल वैसे ही अहमदजी ने भी अपनी कहानियों के माध्यम से यह कोशिश की है कि विभाजन जैसे फैसलों से नेता, लीडर एवं अमीर तबके के लोगों को कोई फर्क नहीं पड़ता, हर दुःख, तकलीफ का शिकार केवल जनता ही होती है। कुल मिलाकर दोनों रचनाकारों के लेखन में बहुत समानताएँ नज़र आती हैं। अहमदजी ने मंटो के समान समाज के ज्वलंत मुद्दों को उठाकर समाज को राह दिखाने की भरपूर कोशिश की है एवं इस तरह ये एक और मंटो के रुप में नज़र आते हैं।

श्रीमती ममता सिंह* एवं डॉ.(श्रीमती) वंदना कुमार**

एस. अहमद, जो कि छत्तीसगढ़ के रायपुर जिले के अतंर्गत जनसंपर्क विभाग में फोटोग्राफर के पद पर कार्यरत थे, समकालीन कहानी के अतंर्गत इन्होंने कई महत्वपूर्ण कहानियाँ लिखीं। स्वयं की लिखी कुछ कहानियों की वजह से इन्हें काफी आलोचना भी झेलनी पड़ी।

उर्दू के महान रचनाकार मंटो से प्रेरित इनकी रचनाएँ काफी कुछ कहती हैं।

मध्यप्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ के तत्कालीन महासचिव रमाकान्त श्रीवास्तव जी ने अहमद जी की कहानियों के विषय में लिखा है कि, ''अहमद जी की कहानियों में आदमी का अन्तर्मन जीवन की समग्रता का अंग लगता है। वहाँ हमारी सामाजिक हलचल विराजमान है। उसमें हमारा देखाझाला आसपास का वह मानव समुदाय है, जहाँ जिन्दगी खाँचों में नही बँटी है, वहाँ चित्रित जीवन मुस्लिम परिवेश या हिन्दू परिवेश की सीमाओं में नही बँधा है।''(1)

मंटो की तरह अहमद जी ने भी जीवन के हर आवश्यक पहलू को अपनी कहानियों में शामिल किया है। मंटो ने मुस्लिम होते हुए भी मुस्लिम समाज की बुराइयों को जिस बेबाकी से उधेड़ा, वह हिम्मत की बात है और इसीलिए वो इतने प्रसिद्ध भी हुए। उसी प्रकार अहमद जी ने भी मुस्लिम समाज से संबंध रखते हुए भी अपने समाज की दकियानूसी परम्पराओं के विरूद्ध लिखते हुए यह नहीं सोचा कि इनके विषय में क्या राय बनाई जाएगी? उनके समाज के लोग उनके विषय में क्या सोचेंगे, बल्कि जो सही था, वही लिखा।

मंटो ने जिस तरह मुस्लिम परिवेश एवं स्त्री जीवन पर बेबाकी से अपनी कलम चलाई है, और इसीलिए वो इतने प्रसिद्ध भी हुए, जिसकी वजह से उनपर काफी आक्षेप भी लगाए गए बिल्कुल उसी तरह अहमद जी को भी स्त्रीयों पर लिखी रचनाओं के कारण काफी आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। भारत–पाकिस्तान बँटवारे का जैसा दर्दनाक चित्रण मंटो ने किया है, वैसा ही अहमद जी की भी कई कहानियों में देखने को मिलता है। बँटवारे के परिणाम का जैसा सजीव चित्रण मंटो ने किया है, वह देखते ही बनता है। मंटो पर लिखी एक पुस्तक में कहा भी गया है–''उर्दू साहित्य में विभाजन समय में हुए दंगो और हत्याओं के केन्द्र में छिपी हुई मानवीय समस्या और संवेदना को शब्द देती हुई सबसे अधिक कहानियाँ हमें मंटो में ही मिलती हैं।''(2)

भारत–पाक विभाजन के बाद मंटो को तुरंत पाकिस्तान जाना पड़ा, लेकिन अपने मन में बसने वाले देश और शहर को वे कभी भूल नहीं पाए और इसकी झलक उनकी कहानियों में देखी जा सकती है। अहमद जी ने भी हिन्दू–मुस्लिम दंगों में स्वयं पर बीती हुई कहानी को 'नींद क्यूँ रात भर नहीं आती' कहानी में बखूबी दिखाया है।

मंटो की लगभग सभी कहानियों की केन्द्रिय पात्र स्त्री है, और अहमद जी की कहानियों में भी स्त्रियों की मुख्य भूमिका है। इन्होंने अपने समाज के विरूद्ध जाकर भी नारियों के हक के लिए बुलंद आवाज उठाई है। मंटो ने अपनी कहानियों 'काली शलवार', 'बू', 'ठंडा गोश्त' एवं 'खोल दो' में किसी न किसी रूप में स्त्रींयों से जुड़ी समस्या,एवं उनके शोषण को ही दिखाया है। 'खोल दो' कहानी में मंटो ने एक युवती की भयावह मानसिक स्थिति का वर्णन किया है कि बेहोशी की हालत में भी उस युवती के सामने जब डाक्टर खिड़की को लेकर कहता है, ''खोल दो'' तो इसका अर्थ वह अपने वस्त्रों से निकालती है और उस अवस्था में भी सचेत हो जाती है। इसी तरह अहमद जी ने भी अपनी कई कहानियों में जैसे 'इज़्ज़त', 'जो क़िताबों में नहीं है', में स्त्री के शोषण को दिखाया है। 'इज़्ज़त' कहानी में जिस प्रकार मौलवी दवा देने की आड़ में रामपियरिया का शोषण करते हैं वह शर्मनाक है।

****शोधार्थी, साहित्य एवं भाषा अध्ययनशाला, पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)***
*****निदेशक एवं सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)***

मंटो ने राजनितीक मुद्दों को भी अपनी लेखनी से दूर नहीं रखा है। मंटो पर कई बार अश्लील लेखन के आरोप लगे हैं और वे हर बार उनसे बरी भी हुए, भारत में बगैर जुर्माना दिए और पाकिस्तान में जुर्माना देकर, पर उन्हें कानूनी कार्यवाही का सामना तो करना ही पड़ा पर मंटो ने इन सब बातों की परवाह ना करते हुए अपनी सोच और लेखन दोनो को ज्यों का त्यों रखा। ''मंटो की पहली कहानी जिस पर मुकदमा चलाया गया वह है, 'काली शलवार'। यह कहानी लाहौर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका अदब 'ए' लतीफ के वार्षिक अंक 1942 में प्रकाशित हुई थी।''[3]

अपने कहानी संग्रह 'बर्फ होती लड़की' की भूमिका में स्वयं अहमद जी ने लिखा है, ''आज हम इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं। उन्नतशील हो गए हैं, नारी को पुरुष के बराबर अधिकार मिल जाने की बात बढ़–चढ़कर करते हैं। सच्चाई तो यह है कि आज भी नारी का शोषण होता है। महाभारत कालीन समाज का वर्णन करते हुए द्रौपदी के चीर–हरण की कथा सुनाई जाती है। रामायण कालीन संस्कृति में एक धोबी के टिप्पणी करने पर राम द्वारा सीता का परित्याग और सीता की आत्मपीड़ा की कहानियाँ मार्मिक भावों के साथ वर्णित की जाती है। आज तो देश के विभिन्न अंचलो में नारी शोषण के, उसकी पीड़ा के मर्मस्पर्शी कांड पढ़ने–सुनने और दूरदर्शन पर देखने को मिल जाते हैं।' वह पुनः लिखते है, ''कहानीकार जब सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधित्व का दम भरता है, तो उसे उस वर्ग के प्रति सजग और आस्थावान भी होना चाहिए। जिससे वह अपने समाज का, परिवेश का आकर्षक और सजीव चित्र प्रस्तुत कर सके।''[4]

मंटो ने अपनी स्त्री पात्रों को अपना जीवन जीने की स्वतंत्रता दी है, चाहे वह हतक की सौगन्धी हो या काली शलवार की शबाना, ये अपना जीवन स्वयं चुनती हैं, इसी तरह अहमद जी की कहानी की नायिकाएँ भी अपने हक के लिए आवाज़ उठाती हुई देखी जा सकती है। 'जो क़िताबों में नहीं है' की अखतरी अपने शौहर के नाइंसाफी के खिलाफ आवाज़ उठाती है, इसलिए नहीं कि उसके शौहर ने दूसरा निकाह कर लिया है, बल्कि इसलिए कि उसने अख्तरी को बताना तक ज़रूरी नहीं समझा। इसलिए वह एक बड़ा कदम उठाते हुए स्वयं अपने शौहर कदीर से अपना रिश्ता खत्म कर लेती है और कहती है, ''मैं तुम्हें तलाक देती हूँ.......तलाक...... तलाक......तलाक और अब तुम मेरे घर से चले जाओ।''[5] मुस्लिम समाज से होते हुए भी अख्तरी के लिए इतना बड़ा कदम उठाना मामूली बात नहीं है। 'रुक्कन बुआ' कहानी की रुक्कन बुआ अपनी बेटियों का और अपना पेट पालने के लिए सिलाई का एवं चरखा चलाने का काम शुरू करतीं हैं, जिसकी वजह से उन्हें समाज के तानो का सामना भी करना पड़ता है लेकिन वो अपने फ़ैसले पर अडिग रहतीं हैं।

इसी तरह 'मुट्ठी भर आसमान' की कसीम जब यह देखती है कि उसके वालिद के गुजरने के बाद भी कोई रिश्तेदार मदद के लिए आगे नहीं आता तो वह अपनी अम्मी की रजामंदी से अपने किराएदार रहमान का हाथ थामने का फैसला करती है तो सभी रिश्तेदार उनलोगों पर अँगुली उठाने लगते हैं, तब मजबूरन कसीम को आवाज़ उठानी पड़ती है, ''मुझे नहीं मालूम कि आप क्या हैं....? लेकिन जब अम्मी ने आपलोगों के सामने झोली फैलाकर हम यतीमों पर हाथ रखने को कहा था तब तो आप हमलोगों को खुदा के हवाले कर चले गए थे।''[6]

'बर्फ होती लड़की' कहानी की निम्मो एक बड़े एवं सम्पन्न परिवार से संबध रखने के बावजूद अपने घरवालों के खिलाफ जाकर अपने दम पर नौकरी करने का निर्णय लेती है। यहाँ अहमद जी स्त्री पात्रों के साथ न्याय करते नज़र आते हैं।

मंटो की तरह ही अहमद जी की स्त्री पात्रों की भी यही खासियत है कि वो अपने जीवन का निर्णय स्वयं लेने के काबिल हैं।

लीलाधर मंडलोई जो कि वर्तमान में ज्ञानपीठ के डायरेक्टर हैं, उन्होंने अहमद जी के स्त्री पात्रों के विषय में लिखा है, ''एस. अहमद की कहानियों में एक अहम पहलू स्त्री विमर्श का है। अख़्तरीबाई, रुक्कन बुआ, कसीम, सलमा जैसी स्त्री–किरदार मूलतः तरक्की पसन्द हैं और धार्मिक और पितृसत्ता की मुख़ालिफ़त में अपनी नयी पहचान गढ़ते हैं। वे सामाजिक उत्पीड़न और धार्मिक क़िलेबन्दी को तोड़ने में सतत् सक्रिय दिखाई देते हैं। अख़्तरीबाई इस सीमा तक प्रतिकार का उदाहरण बनती है कि वह अपने शौहर को तलाक दे देती है। मुसलमान हुई रचना, रुक्कन बुआ और कसीम जैसी स्त्रियों में भी विद्रोह का वही तेवर है जो उस समाज की जड़ताओं को बदलने के लिए सामाजिक और धार्मिक सत्ताओं से लोहा लेता दिखाई देता है।''[7]

मंटो की तरह ही अहमद जी की कहानियाँ भी हमें काफी कुछ सोचने के लिए मजबूर करती हैं, जो आमतौर पर लोग नहीं सोचते। जिस तरह मंटो की कहानियों में विभाजन के दौरान आमलोगों के दुःख–दर्द का चित्रण है, बिल्कुल वैसे ही अहमद जी ने भी अपनी कहानियों में बतलाने की कोशिश की है कि विभाजन जैसे फैसलों से नेता, लीडर एवं अमीर तबके के लोगों को कोई फर्क नही पड़ता, हर दुःख तकलीफ का शिकार केवल आम जनता ही होती है।

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि सआदत हसन मंटो एवं एस. अहमद दोनों रचनाकारों के लेखन में बहुत सारी समानताएँ नजर आतीं हैं। अहमद जी ने मंटो के समान समाज के ज्वलंत मुद्दों को उठाकर समाज को राह दिखाने की भरपूर कोशिश की है एवं इस तरह ये एक और मंटो के रूप में नजर आते हैं।

सन्दर्भ :

(1) श्रीवास्तव, रमाकान्त (1993) : इज़्ज़त कहानी के फ्लेप से, श्री प्रकाशन, दुर्ग। ***(2)*** *परिहार, रामसागर सिंह (2016) : अजब आजाद मर्द था मंटो (उद्‌भावना), अंक 122, दिल्ली, पृ. 163.* ***(3)*** *इस्सर, देवेन्द्र : वही, पृ. 51.* ***(4)*** *अहमद, एस. (2009) : बर्फ होती लड़की, राजेश प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 6, भूमिका से।* ***(5)*** *अहमद, एस. (2005) : बन्द दरवाज़े, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 15.* ***(6)*** *वही, पृ. 74.* ***(7)*** *मंडलोई, लीलाधर (2005) : बन्द दरवाजे कहानी के फ्लेप से, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।*

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal :
Hindi Literature
Research Link - 164, Vol - XVI (9), November - 2017, Page No. 117-118
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

नवोदित लेखिका मनीषा कुलश्रेष्ठ : एक परिचय

प्रस्तुत शोधपत्र नवोदित लेखिका मनीषा कुलश्रेष्ठ के साहित्यिक परिचय से सम्बंधित है। मनीषा कुलश्रेष्ठ का व्यक्तित्व उनके लेखन को एक मौलिक रुप प्रदान करता है। साहित्य व लेखन के प्रति वे पूर्णतः समर्पित हैं। उनका व्यक्तित्व एक कड़ी शृंखला को लेकर चलता है, जो घर से शुरु होकर विश्व मार्ग तक की सैर करवाता है। घर, समाज, राष्ट्र और यहाँ तक की विश्व के प्रति उनकी जानकारी व लेखन उन्हें एक विलक्षण व्यक्तित्व व लेखिका के रुप में प्रतिष्ठित करने में सहायक है। मनीषाजी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उनके लेखन में भी अभिव्यक्त हुआ है।

सुश्री तेजिन्दर

आधुनिक हिन्दी–साहित्य–परम्परा की युवा लेखिका, प्रखर एवं बुद्धिजीवी कवयित्री, अनुभवी एवं जिज्ञासु वृत्ति की स्वामिनी, समर्पित पाठक और साहित्य प्रेमी मनीषा कुलश्रेष्ठ का जीवन प्रेरक और साहित्य सर्वथा विचार, कल्पना एवं संदेश का वाहक है। देश के स्थान–स्थान का भ्रमण करने वाली यायावरी मनीषा कुलश्रेष्ठ अपनी मिट्टी से सदैव जुड़ी रही हैं। अपने जीवन–अनुभवों के अद्भुत संसार से चुने अछूते कथ्यों को वास्तविकता में कल्पना का मंजुल पुट प्रदान कर मनीषा ने आधुनिक कथा साहित्य को प्रदीप्त एवं समृद्ध किया है। मनीषा कुलश्रेष्ठ युवा पीढ़ी के उन लेखकों में से हैं, जिन्होंने अपने साहित्य और लेखन में समाज के प्रत्येक वर्ग का अध्ययन–अनुशीलन करके पाठक वर्ग को प्रेरित करने का बीड़ा उठाया है। साहित्य और संगीत का अद्वितीय सामंजस्य इनके व्यक्तित्व की अभूतपूर्व विशेषता रही है। कथक में विशारद की उपाधि प्राप्त कर चुकी मनीषा ने कथक व शास्त्रीय संगीत में भी अमूल्य योगदान दिया। कथक इनके जीवन का समर्पित हिस्सा रहा और साथ ही उन्होंने साहित्य के प्रति अटूट निष्ठा और लगन को कभी दूर न होने दिया। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि एक साहित्य प्रेमी ने संगीत को अपना जीवन समर्पित किया और एक संगीत प्रेमी ने साहित्य को और भी सप्राणता प्रदान की।

मनीषा कुलश्रेष्ठ को जीवन के बहुरंगी अनुभव प्राप्त हैं। वे अनूठी प्रतिभा की मालिक है। अपनी मातृभूमि से दूर बसने पर भी आज भी उनका मन उसी मिट्टी से बसता है। आत्मकथा का अंश लिखते हुए वे कहती हैं :

''कश्मीर हो या आसाम मैं कहीं भी रहूं राजस्थान मेरी रगों में बहता रहा है। मेरी कहानियों में वह लौट–लौट कर आता है....कभी समूचा तो कभी कोलाज बनकर।''(1)

आधुनिक हिन्दी कथाकारों में अपना स्थान बनाने वाली मनीषा कुलश्रेष्ठ का जन्म 26 अगस्त 1867 को जोधपुर (राजस्थान) में हुआ। इनकी कहानियों में भी राजस्थानी परिवेश की गंध विद्यमान है। स्पष्ट ही इनके लेखन पर इनकी जन्मभूमि राजस्थान के परिवेश एवं परिस्थितियों की प्रति'छाया यत्र–तत्र विविध रूप–रंगों में झलकती है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ का बचपन चितौडगढ़ में व्यतीत हुआ। इनकी माता श्रीमती सुधा कुलश्रेष्ठ का इनके व्यक्तित्व व इनके जीवन पर गहरा प्रभाव है। इनके पिता श्री सुमतेन्द्र कुलश्रेष्ठ हैं, जो अपने क्षेत्र के आदरणीय व सम्मानीय व्यक्ति हैं। मनीषा जी अपने माता–पिता की आज्ञाकारी बेटी हैं। इनके जीवन व रचनाकार्य पर इनके माता–पिता का आशीर्वाद झलकता है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की शिक्षा उदयपुर में ही सम्पन्न हुई। उदयपुर के 'मीरा गर्ल्स कॉलेज' से इन्होंने बी.एस.सी. की डिग्री प्राप्त की। तत्पश्चात् शिक्षा के क्षेत्र में इनके भाग्य और इनके मन ने एक अहम मोड़ लिया। विज्ञान की छात्रा होने के बावजूद इन्होंने हिन्दी भाषा व साहित्य की ओर रुख लिया और हिन्दी के प्रति इनका गहरा लगाव इन्हें एम.ए. हिन्दी की तरफ मोड़ लाया। हिन्दी में एम. ए. करने के पश्चात् वे शोध के क्षेत्र में आगे बढ़ीं और सुखाडिया विश्वविद्यालय से इन्होंने एम.फिल की डिग्री प्राप्त की। इनका जीवन और व्यक्तित्व विविधताओं से भरा पड़ा है। इनके व्यक्तित्व का एक अन्य पक्ष भी उभर कर हमारे सामने आता है। इन्होंने नृत्य के क्षेत्र में अपनी अनूठी प्रतिभा का प्रदर्शन करके विशारद (कथक) की उपाधि भी प्राप्त की। नृत्य के क्षेत्र में इन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त करके भारतीय सभ्यता व संस्कृति के प्रति अथाह प्रेम, लगाव, निष्ठा व सम्मान भाव को प्रस्तुत किया।

मनीषा कुलश्रेष्ठ का विवाह वायुसेना अधिकारी ए.के. कुलश्रेष्ठ (विंग कमांडर) के साथ हुआ। विवाहोपरांत पहले चार वर्ष इन्होंने

प्रवक्ता (हिन्दी विभाग), कन्या महाविद्यालय, जालन्धर (पंजाब)

बीकानेर में व्यतीत किए। इनकी दो बेटियां अवनी और कनुप्रिया कॉलेज में पढ़ाई कर रही हैं। मनीषा कुलश्रेष्ठ के लेखन पर इनके पति और फौजी परिवेश का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। इनकी कई कहानियाँ फौजियों के जीवन की स्थितियों–परिस्थितियों का जायका लेकर उनके जीवन को प्रस्तुत करने में सफल बन पड़ी हैं। फौजी की पत्नी होने के कारण एवं पति का समय–समय पर स्थानान्तरण होते रहने के कारण इन्हें देश के विभिन्न क्षेत्रों में आने–जाने, रहने व घूमने का अवसर प्राप्त हुआ और इसी यायावरी वृत्ति ने उनके व्यक्तित्व को अनुभव–सम्पन्नता तथा लेखन को विषय–वैविध्य प्रदान किया। वे स्वयं अनुभव करती हैं :

''अपनी यायावरी के दौरान जो भी भीतर का, बाहर का बटोरा है, उस अनुभव की अस्त–व्यस्त पोटली में से हर बार कुछ नया निकाल कर झाड़–पोंछ कर, एक अ'छे बोध के साथ सजा कर लोगों के सामने रखने की चाह हमेशा रही है, शायद वही है....मेरा लेखन।''(2)

सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक परिवेश प्रत्येक व्यक्ति के जीवन पर अपना प्रभाव डालता है। किसी के जीवन पर कम तो किसी के जीवन पर अधिक। लेखक संवेदनशील होता है, जिसके कारण परिस्थितियाँ उसे गहनता से प्रभावित करती हैं और लेखक की यह भी प्रवृत्ति है कि वह प्रभाव ग्रहण करने में अपेक्षाकृत अधिक सक्षम भी होता है। रवीन्द्र नाथ टैगोर कृत 'गोरा' उपन्यास इनके लिए सबसे बड़ा प्रेरणा स्रोत रहा है। इस उपन्यास ने इनकी बौद्धिकता व वैचारिकता पर गहरा प्रभाव डाला। 'गोरा' पढने के पश्चात् इनके लेखन में काफी बदलाव आया, ऐसा वे स्वयं स्वीकार करती हैं।

मनीषा कुलश्रेष्ठ के जीवन और लेखन पर भी चतुर्दिक परिस्थितियों ने अधिक प्रभाव डाला। इनके लेखन में सामाजिक परिवेश अधिक प्रतिफलित हुआ है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इनकी कहानियों में देखा जा सकता है। वे स्वयं अनुभव करती हैं कि उनके आस–पास के वातावरण व परिवेश जन्य परिस्थितियों ने उन्हें बेहद प्रभावित किया। मनीषा ने हिन्दी–कथा–साहित्य संसार को 'कठपुतलियां' और 'कुरजां' जैसी कहानियाँ देकर राजस्थानी परिवेश का एक अनूठा आयाम दिखाया, जिसके संदर्भ में कृष्ण बलदेव वैद कहते हैं :

''मनीषा की कहानियों में राजस्थान के रेगिस्तानी इलाकों का नीला सन्नाटा 'बहुत खूब' है।''(3)

फौजी परिवेश में रहते हुए इन्हें स्थान–स्थान का भ्रमण करने का मौका मिला, जिसका अनुभव इनके कथा–संसार का अभिन्न अंग है। अलग–अलग स्थानों पर जाकर परिवेश की विविधता व विविध प्रवृत्तियों के घेराव और विविध प्रवृत्तियों के लोगों के साथ मिलने–बैठने और अनुभव प्राप्त करने का मौका मिला जिसे इन्होंने सकारात्मक प्रेरणा–स्वरूप ग्रहण करके साहित्य व लेखन के माध्यम से उसे अभिव्यक्ति प्रदान की। मनीषाजी के शब्दों में–

''अनुभव जगत का अपार विस्तार हो, सटीक अभिव्यक्ति का वरदान हो और भाषा उंगलियों पर नाचती हो....घने नम जंगलों से लेकर रेगिस्तानी धोरों में तरह–तरह के सांपों की तलाश में भटकता, गुनगुनाता, मौलिक लोकगीत रचता कालवेलिया भी कथाकार हो जाता है.....।''(4)

इनका जीवन और जीवन का अनुभव–संसार ही इनके लेखन की प्रेरणा रहा है। परिस्थितियाँ लेखक की कलम को गतिशील रहने को मजबूर करती है और मनीषा के व्यक्तित्व की भी यही खासियत है कि उन्होंने अपनी कलम को कभी भी रुकने नहीं दिया। वे लिखती हैं : ''मुद्दे उठाकर कहानियाँ लिखना मेरा उद्देश्य नहीं रहा। जीवन और अनुभव की विविधताओं में अवसर मुद्दे बहुत सहज तरीके से आ जुड़ते हैं, तो मैं उनपर अपने तरीके से कलम चला लेती हूँ।''(5)

साहित्य के साथ–साथ इंटरनेट के तकनीकी व प्रायोगिक क्षेत्र में रुचि व ज्ञान रखने वाली युवा लेखिका मनीषा कुलश्रेष्ठ इंटरनेट की पहली हिन्दी वेब पत्रिका 'हिन्दीनेस्ट' का पिछले ग्यारह वर्षों से संपादन कर रही हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने वर्धा विश्वविद्यालय की वेबसाइट 'हिन्दी समय डॉट कॉम' का भी निर्माण किया। संगमन की वेबसाइट 'संगमन डॉट कॉम' के निर्माण व देखरेख के कार्य में भी वे सतत् संलग्न हैं। 'नया ज्ञानोदय' में हिन्दी भाषा, साहित्य व हिन्दी कम्प्यूटिंग से संबंधित इनके लगातार कॉलम छपते हैं। इसके साथ–साथ स्वतंत्र लेखन के क्षेत्र में मनीषा पूरी निष्ठा व गहरी आस्था के साथ अपना काम कर रही हैं।

''इनकी प्रतिभा का एक और आयाम है, जिसका जिक्र किये बिना इनका परिचय अधूरा है, 'हिन्दी कम्प्यूटिंग' को लेकर इन्होंने नया ज्ञानोदय में जो लगातार कॉलम 'इंटरनेट' लिखा है, उसने तकनीकी से भागने वाले हिन्दी लेखक व पाठक दोनों का दृष्टिकोण बदला है।''(6)

नवोदित युवा लेखिका मनीषा कुलश्रेष्ठ का लेखन अपने परिवेश की अभिव्यक्ति है। इनकी कहानियाँ व उपन्यास पाठक वर्ग पर गहरी छाप छोड़ने में समर्थ हैं। कुछ ही समय में इन्होंने साहित्य–लेखन के क्षेत्र में विशेष ख्याति प्राप्त कर ली। इसी का सुपरिणाम है कि इन्हें राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा 'चन्द्रदेव शर्मा सम्मान' एवं 'रांगेय राघव सम्मान' से नवाकाा गया। साहित्य के प्रति गहरी निष्ठा व आत्मिक प्रेम का ही परिणाम है कि इन्हें 'डॉ. घासीराम वर्मा सम्मान' और 'कृष्ण बलदेव वैद फैलोशिप' से भी अलंकृत किया गया। इसके अतिरिक्त इन्हें 'लमही सम्मान' द्वारा भी विभूषित किया गया।

मनीषा कुलश्रेष्ठ का व्यक्तित्व उनके लेखन को एक मौलिक रूप प्रदान करता है। साहित्य व लेखन के प्रति वे पूर्णतरू समर्पित हैं। उनका व्यक्तित्व एक कड़ी श्रृंखला को लेकर चलता है, जो घर से शुरु होकर विश्व–मार्ग तक की सैर करवाता है। घर के प्रति, समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति और यहां तक कि विश्व के प्रति उनकी जानकारी व लेखन उन्हें एक विलक्षण व्यक्तित्व व लेखिका के रूप में प्रतिष्ठित करने में सहायक हैं। मनीषा का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उनके लेखन में भी अभिव्यक्त हुआ है।

<u>संदर्भ</u> :

*(1) मनीषा कुलश्रेष्ठ की डायरी से उद्धृत। (आत्मकथ्य)। **(2)** वही। **(3)** परम्परा और आधुनिकता के सुतंलन का पर्याय। **(4)** मनीषा कुलश्रेष्ठ की डायरी से उद्धृत। (आत्मकथ्य)। **(5)** वही। **(6)** परम्परा और आधुनिकता के संतुलन का पर्याय।*

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 164, Vol - XVI (9), November - 2017, Page No. 119-120
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

सत्ता संघर्ष और दलित अस्मिता : एक अध्ययन

प्रस्तुत शोधपत्र सत्ता संघर्ष और दलित अस्मिता को लेकर विश्लेषण करता है। दलित बुद्धिजीवियों के आज राजनीति और धर्मनीति पर विचार करने की आवश्यकता है। बाबा साहेब का विचार था कि सत्ता में भागीदारी के बिना दलितों की समस्याओं का समाधान नहीं होगा। उनके जीवन का उद्देश्य दलितों को पूर्ण मुक्ति दिलाना था। इसके लिए राजसत्ता तक पहुँचने का मार्ग उन्होंने चुना। मुख्यधारा के सत्ता संचालों से संवाद स्थापित कर, दलित समाज की बुनियादी जरुरतों को पूरा करवाते हुए दलितों को सम्मान दिलाने के लिए वे संघर्ष कर रहे थे। दलितों की अस्मिता की रक्षा की, उन्हें सत्ता में प्रतिनिधि का सम्मान दिलवाया।

सलेन्द्र

इस देश की विडम्बना यह रही कि कलम सदा एक ही वर्ग विशेष के हाथों में कैद रही। इस वर्ग की बुद्धिमता पर तो कोई संदेह नहीं किया जा सकता, लेकिन इसने अपनी बुद्धिमता का इस्तेमाल नकारात्मक रुप में ही अधिक किया। उसने कलम से जितनी नाइंसाफिया की जा सकती थी, उतनी की। बकौल मान्य शान्ति स्वरुप बौद्ध यह वर्ग कलम का सिपाही होने की बजाए कलम का कसाई ही साबित हुआ। इन कलम कसाई इतिहासकारों ने अपने वर्ग के नायकों का गुणगान तो बड़ी मुस्तैदी से किया, लेकिन दलित – आदिवासी समाज के पात्रों को अंधेरे कुएं में डाल दिया। ऐसे में कहा जा सकता है कि हम जिसे मुख्यधारा का लेखन कहते आए हैं, उसका साहित्य भी साम्प्रदायिक भावना से ग्रसित है और इतिहास भी। यहाँ इतिहास के नाम पर की गई बेइमानियों की लम्बी परंपरा है। जब दलित नायकों के चरित्र रचने की बारी आई तो हमारे तथाकथित लेखकों की कलम की स्याही सूख गई।

दलित समुदाय केवल दलितों के ना होकर सारे भारतीय समाज की समस्या है। परंपरावादी हिन्दू चिंतन में अपरिवर्तनीय वर्णव्यवस्था राष्ट्र की अवधारणा के लिए स्थान नहीं हो सकता। डॉ0 अम्बेडकर ने भी स्पष्ट किया की जाति व्यवस्था केवल श्रम का नहीं, बल्कि श्रमिकों का भी विभाजन है। इसलिए जातीय व्यवस्था से लड़े बिना आर्थिक व्यवस्था से लड़ना दलित समस्या का हल नहीं बन सकता। अछूत जातियों के मानवीकरण का सम्पूर्ण चिंतन ही दलित विमर्श की अर्थवन्ता है।[(1)]

दलित आन्दोलन के प्रमुख कारक भारत में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक विसंगतियाँ हैं। इन्हीं विसंगतियों की उपज दलित आन्दोलन है। आज सामाजिक समता जहाँ देश की जरुरत है, वहीं आर्थिक विशमता समाप्त करने की मांग बढ़ रही है। धार्मिक भेदभाव से जहाँ धर्म परिवर्तन को बढ़ावा मिल रहा है, वहीं समाज में विघटन की सम्सया पैदा हो रही है। सांस्कृतिक स्थिति में जहाँ लोगों के मन और मस्तिष्क में पुरानी परम्पराओं मिथकों, अवैज्ञानिक और अतार्किक धारणाओं को ढूंढने की कोशिश साहित्य और मीडिया द्वारा की जा रही है, वह अनुचित एवं अवांछनीय है। उक्त विसंगतियाँ दलित विरोधी हैं। इसलिए प्रत्येक क्षेत्र में वह आन्दोलन कर रहा है। सम्मान और समानता सभी क्षेत्रों तक तब तक उसे नहीं मिलेगी, संघर्ष चलता रहेगा। प्राचीन काल में शूद्र, अतिशूद्र कहकर जिस दलित को अपमानित किया गया है, उसी के राजनैतिक आंकलन का प्रयास शोध पत्र में किया गया है।[(2)]

भारत की आरम्भिक सामाजिक स्थिति के निर्माण में राजनीति की प्रमुख भूमिका रही है। इस देश जब आर्य लगभग चार हजार वर्ष पूर्व आये, तो यहाँ के मूल निवासी अनार्यों से जिन्हें द्रविड़, असुर, नाग कहते थे, उनका जमकर संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में अनार्य पराजित हुए। पराजित अनार्यों में बहुतों का वध कर दिया गया। बहुतों को गुलाम बना कर खेतीबारी आदि करने के लिए रख लिया गया। पराजित अनार्यों के घृणित, बहिष्कृत शूद्र बता कर उनके सभी अधिकार छीनकर असहाय कर दिया गया। अनार्यों के वध के बाद भी उनकी संख्या अधिक थी, इसलिए आर्यों के बुद्धिजिवियों ने राजनीतिक चाल चलकर समाज को चार भागों में बांट दिया। बुद्धिजिवी आर्यों को ब्राहम्ण, लड़ाकु आर्यों को क्षत्रिय, व्ययसायिक आर्यों को वैश्य और समस्त पराजित अनार्यों को शूद्र श्रेणी में डालकर उन्हे अपमानित या अपमान का जीवन जीने को मजबूर कर दिया गया। पहले कुछ आर्यों के तीनों वर्णों की आपस में शादियाँ होती रहीं। एक वर्ण में जब दूसरे वर्ण में आती जाती रही, बाद में इसे बंद कर वर्णों को स्थिर कर दिया गया। बुद्धिजीवी ब्राहमणों और सैनिक सत्ता के स्वामी क्षत्रियों ने आपस में सांठ–गांठ कर ली। ब्राहम्णों को कानून बनाने, पढ़ने, पढ़ाने व पूजा पाठ का काम दे दिया

एक्सटेंशन हिन्दी प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय, बरवाला, हिसार (हरियाणा)

गया। क्षत्रियों को ब्राहम्णों द्वारा बनाए गए कानूनों व नियमों को लागू करने, उसका उल्लघंन करने वालों को दंडित करने का अधिकार दे दिया गया। इससे समाज में ब्राहम्णों का वर्चस्व बहुत बढ़ गया। दोनों को मिली राजनीति में दोनों का स्वार्थ सिद्ध होता था।[3]

सन् 1920 में गाँधीजी के हाथ में कांग्रेस का नेतृत्व आया। हिन्दू धर्म में इनकी अटूट आस्था थी और वर्ण व्यवस्था के पोषक थे। वे अस्पृश्यता के अवश्य विरोधी थे, दलितों के मन्दिर में प्रवेश के समर्थक थे। सर्वोदय में इनका विश्वास था, जिनमें अमीर–गरीब सभी को बराबर महत्व मिलता था। उनका कहना था कि मुझे प्रत्येक धर्म उतना ही प्रिय है, जितना कि हिन्दू धर्म। गाँधी जी भी स्वतंत्रता के पक्षधर थे। लगभग इसी समय में दलित परिवार में जन्मे डॉ0 भीमराव अम्बेडकर अमरीका, इग्लैण्ड से ऊँची शिक्षा प्राप्त कर भारत आए। दलितों में प्रसन्नता व्याप्त हो गई। डॉ0 अम्बेडकर ने छुआछात और असमानता का विरोध किया। सन् 1927 ई0 में नागपुर में दलितों की एक विशाल सभा में उनके भाषण से उनका बड़ा नाम हुआ। दिनांक 23 नवंबर 1927 ई0 बरार में अछूत नेता पंजवराव देशमुख और जी0ए0 गवई द्वारा आयोजित विशाल दलित सम्मेलन में उन्होंने कहा, "यह भूमि वितरण ही समता के नए युग का सूत्रपात करेगी। हिन्दू समाज को समानता तथा जाति विहीन समाज बनाने के लिए हमारा संघर्ष चलता रहेगा। दलित के अधिकारों को दिलाने के लिए चोबदार तालाब में सभी दलितों के साथ उसमें पानी पीकर संघर्ष की शुरुआत की। दलितों के लिए शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो का नारा देकर उनका लक्ष्य बता दिया।[4]

20 जुलाई 1924 ई0 को बहिष्कृत हितकारिणी सभा और 1927 ई0 को बहिष्कृत भारत नामक अखबार की शुरुआत की। सन् 1919 ई0 में इण्डिया एक्ट बना जिसके अनुसार अछूतों को पहली बार केन्द्रिय धारा सभा में 4 सदस्य और मद्रास में 10 सदस्यों को मनोनीत करने का अवसर दिया गया। गवर्नर जनरल की केन्द्रिय विधानसभा में 14 सदस्यों को प्रतिनिधित्व दिया गया। जिनमें एक सदस्य दलित वर्ग का होना था। जिस समय महाराष्ट्र में डॉ0 अम्बेडकर दलितों की लड़ाई लड़ रहे थे, उसी समय भारत के विभिन्न भागों में दलितों का संघर्ष चल रहा था। उत्तर प्रदेश में आदि हिन्दू आन्दोलन, पंजाब में आदि धर्म आन्दोलन, बंगाल में नमः शूद्र आन्दोलन, केरल में नारायण गुरु आन्दोलन, तमिलनाडु में आदि द्रविण आन्दोलन आदि चल रहे थे। बिहार और मैसूर में भी ब्राहम्णवाद के विरूद्ध आन्दोलन चल रहे थे। इन आन्दोलनों में डॉ0 साहेब को बल मिल रहा था।[5]

सन् 1928 में साइमन कमीशन के समक्ष बाबा साहेब ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग रखी। 20 सितम्बर 1932 ई0 को गोलमेज कान्फ्रेंस में डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर ने जो भाषण दिया था, उनका उद्देश्य दलितों की स्थिति को सम्मेलन के सामने पेश करना है, जो संविधान में सुधार हेतु बुलाया गया है। भारत में साधारण से साधारण नागरिक को जो अधिकार मिले हुए हैं, उन नागरिकों से भी दलित वर्ग वंचित है। ब्रिटिश सरकार ने दलितों की उस घृणास्पद स्थिति को दूर करने के लिए कोई प्रयत्न किए ? 150 वर्ष पहले जब अंग्रेज भारत में आए थे, तो दलित मन्दिरों में नहीं जा सकते थे, क्या अब हम उसमें जा पाते हैं ? ब्रिटिश शासन के पहले दलित पुलिस सेवा में जाने से वर्जित था, क्या अब हम उसमें जा सकते हैं ? ब्रिटिश सरकार से पहले हम सेना में भर्ती नहीं किए जाते थे। क्या ब्रिटिश सरकार ने सेना की सेवा हमारे लिए खोल दी ? हमने जो अनुभव किया वह यह है कि अंग्रेज हमारे मामले को हल करने में सर्वथा अयोग्य है। इसलिए अब हम भारत में ऐसी सरकार चाहते हैं, जो देशहित में भारत के सामाजिक व आर्थिक मौजूदा कानूनों को बदलनें में पूर्णता समर्थ हो। अच्छाई इसी में है कि जो राजनीतिक समझौता यहाँ हो, वह ऐसा हो कि उस राजनैतिक ढांचें में राजनैतिक शक्ति खुद हमारे हाथों में हो। हम दूसरे सत्ता सम्पन्न लोगों के रहमो–करम, दया और मर्जी पर नहीं जीना चाहते। अपनी बात रखते हुए डॉ0 अम्बेडकर ने दलितों के पृथक निर्वाचन पर जोर दिया। और संघर्ष करते–करते पूना पैक्ट के नाम से जाना जाता है। यहीं से दलितों के आरक्षण की नींव पड़ी।

दलित बुद्धिजिवियों के आज राजनीति और धर्मनीति पर विचार करने की आवश्यकता है। बाबा साहेब का विचार था कि सत्ता में भागीदारी के बिना दलितों की समस्याओं का समाधान नहीं होगा। उनके जीवन का उद्देश्य दलितों को पूर्ण मुक्ति दिलाना था। इसके लिए राजसत्ता तक पहुँचने का मार्ग उन्होंने चुना। मुख्यधारा के सत्ता संचालकों से संवाद स्थापित कर, दलित समाज की बुनियादी जरुरतों को पूरा करवाते हुए दलितों को सम्मान दिलाने के लिए वह संघर्ष कर रहे थे। दलितों की अस्मिता की रक्षा की उन्हें सत्ता में प्रतिनिधि का सम्मान दिलवाया। आशा की जाती है दलित प्रतिनिधि संसद एवं विधानसभाओं में पहुँचकर दलितों के सम्मान की रक्षा करेंगे उनके हित में कानून बनवाएंगे। दलित अधिकारियों से अपेक्षा की जाती है कि वे कार्यपालिका के जरिए दलितो का भला चाहेंगे। उनके अधिकारों की रक्षा करेंगे और उनकी अस्मिता बनाए रखेंगे।

संदर्भ :

(1) भारती, कँवल : दलित विमर्श की भूमिका, इतिहास बोध प्रकाशन बी–239, चंद्रशेखर आजाद नगर, इलाहाबाद, पृ0 1.

***(2)** प्रसाद, डॉ0 माता : सामाजिक परिवर्तन में दलित साहित्य की भूमिका, प्रकाशक भारतीय दलित साहित्य अकादमी 233, टैगोर पार्क, मॉडल टाउन, दिल्ली, पृ0 44.*

***(3)** वही, पृ0 45.*

***(4)** प्रसाद, चन्द्र भानु : भारतीय समाज और दलित राजनीति, प्रकाशक, गौतम बुक सेन्टर, चन्दन सदन सी–263 ए, गली न0 9, हरदेवपुरी, शाहदरा, दिल्ली, पृ0 65.*

***(5)** डॉ0 धर्मबीर : डॉ0 अम्बेडकर और दलित आंदोलन, शेष साहित्य प्रकाशक 30164 गली न0 8, विश्वास नगर, शाहदरा दिल्ली, पृ0 14.*

UGC Approved Journal
Research Link

Since March 2002

An International, Registered & Referred Monthly Journal :
Hindi Literature
Research Link - 164, Vol - XVI (9), November - 2017, Page No. 121-122
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

स्वतंत्रता पश्चात् हिन्दी भाषा शिक्षण के विकास का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समीक्षात्मक अध्ययन

प्रस्तुत शोधपत्र में स्वतंत्रता पश्चात् हिन्दी भाषा शिक्षण के विकास का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। हिन्दी स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा है। हिन्दी भाषा की गणना विश्व की महत्वपूर्ण भाषाओं में होती है। भारत में अनेक भाषा बोली जाती है। इसमें से 18 भाषाएँ संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित है। हिन्दी भाषा को भी स्वतंत्रता के पश्चात् ही भारतीय संविधान में संघ की राजभाषा घोषित किया गया है। सन् 1947 से अब तक हिन्दी भाषा में काफी परिवर्तन देखा गया है। वर्तमान में हिन्दी भाषा अंतर्राष्ट्रीय स्तर के विश्वविद्यालयों में अपना स्थान बना चुकी है। वर्तमान में हिन्दी भाषा शिक्षण का माध्यम नहीं, वरन् यह व्यापार व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक प्रतिष्ठित भाषा का स्थान ले चुकी है।

संदीप सिद्ध

(1) प्रस्तावना :

भाषा हमारी अभिव्यक्ति का माध्यम या साधन है। सामान्यतः भाषा मनुष्य की सार्थक अभिव्यक्ति वाणी को कहते हैं। भाषा के द्वारा मनुष्य के भावों और विचारों और भावनाओं को व्यक्त किया जाता है। वस्तुतः विचार और भाव विनिमय के साधन के लिखित रूप को ही भाषा कहते हैं। भाषा शिक्षा का मेरूदण्ड है। भाषा के माध्यम से ही हम शिक्षा ग्रहण करते हैं। भाषा ही वह साधन है, जिसके माध्यम से पाठ्यक्रम का अनुशीलन कर मानव शैक्षिक उन्नति करता है। भाषा मनुष्य के विकास की आधारशिला है। भाषा में ही बालक इस संसार में अपनी प्रथम भाषिक अभिव्यक्ति देता है। बालक अपनी माँ से लोरी द्वारा इस भाषा को सुनता है और एक दिन यही भाषा उस शिशु की तोतली बोली बनकर उसके भाव प्रकाशन का माध्यम बनती है। भाषा सम्प्रेक्षण का प्रभावशाली माध्यम है। इसी माध्यम से मानव समाज में अपने विचारों और भावों को प्रेषित करता है। भाषा समस्त मानसिक व्यापारों मनोभावों की अभिव्यक्ति का साधन है। भाषा सामाजिक संगठन सामाजिक मान्यताओं और सामाजिक व्यवहार के विकास का एकमात्र संगठन साधन है। अतः भाषा शिक्षण राष्ट्र की अभिवृद्धि के लिए अत्यावश्यक है राष्ट्र के विकास में भाषा शिक्षण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भाषा हमारे चिंतन का आधार है। किसी भी जनतंत्र की सफलता उसके नागरिकों के चिंतन पर निर्भर करती है। जीवन के प्रति परस्पर व्यक्ति भाषा का ही सहारा लेकर जीवित रहता है और ज्ञान–विज्ञान के अनेक विषयों का अध्ययन करता है। किसी कवि की भावना भाषा का सम्बल पाकर ही अनुपम कृति के रूप में संसार के समक्ष अवतरित हो जाती है। यही कारण है कि किसी भी राष्ट्र के पुनर्निर्माण के कार्य में भाषा की शिक्षा का विशिष्ट महत्व होता है। अतः भाषा के स्वरूप को जानना आवश्यक है।

(2) स्वतंत्रता पश्चात् हिन्दी भाषा शिक्षण के विकास की प्रक्रिया :

(2.1) सन् 1947 से सन् 1960 तक : स्वतंत्रता के पश्चात् देश में हिन्दी का विकास धीरे–धीरे होन लगा, लेकिन उस समय हिन्दी का विकास भले ही रूका न हो, लेकिन सरकारी कामकाज में उसकी गति लगातार और तेजी से घट रही थी आजादी के तुरंत बाद 14 सितंबर 1949 को संविधान सभा में हिन्दी को राजभाषा के रूप में मान्यता देने की घोषणा की गई, मगर इस संबंध में कानून नहीं बना और हिन्दी को राजभाषा का जामा पहना दिया गया, परंतु जब जनवरी 1950 को भारत का संविधान लागू हुआ था। संविधान के अनुच्छेद 343 के उपबंध 1 तहत देवनागरी लिपि में लिखि जाने वाली हिन्दी को भारतीय संघ की राजभाषा का दर्जा तो दिया गया, लेकिन इसी अनुच्छेद के उपबंध 3 के तहत यह व्यवस्था दे दी गई कि राजभाषा हिन्दी के साथ–साथ सहभाषा के रूप में अगले 15 वर्षों तक अंग्रेजी के प्रयोग का अधिनियम संसद द्वारा बना दिया गया, परंतु हिन्दी के विकास व शिक्षण के लिए सन् 1954 में राजभाषा आयोग गठित किया गया, जिसने 1956 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, परंतु इस रिपोर्ट पर अमल नहीं किया गया, तथापि हिन्दी का विकास धीरे– धीरे चलता रहा।

(2.2) सन् 1961 से सन् 1970 तक : सन् 1960 में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय और 1960 में केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद् बनी। इस वर्ष केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मंडल बना, जिसने तीन वर्षों बाद केन्द्रीय हिन्दी संस्थान की स्थापना की। सन् 1961 में भारत सरकार ने प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ.डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की इस आयोग ने विधि को छोडकर विज्ञान, मानविकी, आयुर्विज्ञान, कृषि विज्ञान, इंजीनियरिंग, प्रशासन आदि अनेक विषय की प्रामाणिक शब्दावली विकसित की।

शोधार्थी (हिन्दी), हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (मध्यप्रदेश)

सन् 1963 में राजभाषा अधिनियम बना, परंतु तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने 1967 के दौरान उन्होंने राजभाषा अधिनियम 1963 के खंड 3(1) में संशोधन कर अंग्रेजी को अनिश्चित काल के लिए भारत की सहभाषा बना दिया। इस तरह हिन्दी व हिन्दी शिक्षण के विकास की गाड़ी रूक–रूक कर चलती रही।

(2.3) सन् 1971 से सन् 1980 तक : सन् 1975 में विनोबा भावे के निर्देशन और केन्द्रीय गाँधी स्मारक निधि के प्रयास से दिल्ली में देवनागरी लिपि परिषद की स्थापना हुई, जिसका लक्ष्य था, देवनागरी लिपि के माध्यम से भारतीय भाषाओं को एक सूत्र में पिरोना। इसी के साथ विश्व हिन्दी सम्मेलनों की शुरूआत हुई और एक स्वतंत्र विभाग के रूप में राजभाषा विभाग की स्थापना हुई। इस दशक में हिन्दी फिल्मों के प्रभाव के रूप में हिन्दी संवादों की लोकप्रियता बडी व हिन्दी पढ़ने व सुनने की लोकप्रियता को देश–विदेश में बढ़ाया। सन् 1976 में राजभाषा नियम बना, जिसमें राजभाषा नीति के पालन के लिए पूरे देश को भाषायी आधार पर तीन क्षेत्रों में बांटा गया। इसी वर्ष संसदीय राजभाषा समिति का गठन किया गया व हिन्दी शिक्षण व हिन्दी साहित्यों का विकास धीरे–धीरे देश में होने लगा।

(2.4) सन् 1981 से सन् 1990 तक : हिन्दी सूचना प्रौद्योगिकी के साथ–साथ हिन्दी प्रकाशन व शिक्षण जगत में व्यापक क्रांति हुई। हिन्दी में पुस्तकों और समाचार पत्रों का प्रकाशन टेबलों पर आ गया। 1988 तक आते–आते कई नाटक, शिक्षण कार्यक्रम, रामायण महाभारत टी.वी. पर आने लगे व हिन्दी शिक्षण देश में फैलने लगा व सन् 1989 में सिंगापुर में हिन्दी सोसायटी की स्थापना हुई।

(2.5) सन् 1991 से सन् 2000 तक : बीसवी सदी का अंतिम दशक टेलिविजन प्रसारण के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांति का दशक रहा। कई विदेशी चैनल देश की भाषा में कार्यक्रम प्रसारित करने लगे। साहित्य में कई नए रचनाकार उभरे, जिन्होंने कई पुस्तकें अध्ययन के क्षेत्र में हिन्दी में प्रकाशित की। चौथे विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन 1993 में मॉरिशस में, पाँचवा 1996 में त्रिनिदाद में, छटा 1999 में लंदन में हुआ 1997 में वर्धा में महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। सन् 2000 में कम्प्यूटर के क्षेत्र में माईक्रोसॉफ्ट ने विंडो 2000 सिस्टम भारतीय बाजार में उतारा, जिसमें हिन्दी शिक्षण व लेखन से सम्बंधित प्रोग्राम दिए गए।

(2.6) सन् 2001 से अब तक (राष्ट्रीय स्तर पर) : सन् 2001 से हिन्दी शिक्षण व विकास की प्रक्रिया संचार व पुस्तकों के माध्यम से गाँवों–गाँवों व शहरों तक तेजी से फैलती गई। इसमें संचार के साधनों का बहुत अधिक योगदान रहा और हिन्दी शिक्षण के विकास की प्रक्रिया लोकव्यापी होती चली गई। आज ज्ञान–विज्ञान के तमाम क्षेत्रों में हिन्दी तेजी से बढ़ रही है। सूचना, संचार आविष्कार और विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी तेजी से विकास कर रही है। कम्प्यूटर, इलेक्ट्रॉनिक, सूचना प्रौद्योगिकी, विज्ञान, अर्थशास्त्र, दर्शन, सामाजिक विज्ञान, राजनीति विज्ञान, गणित, बायोटेक्नोलॉजी की पुस्तकें अब हिन्दी में उपलब्ध होने लगी हैं। अब हिन्दी में शोध कार्य भी होने लगे हैं। आज हिन्दी में इतनी आत्म शक्ति है कि वह अब फलती–फूलती जा रही है। सन् 2007 जनवरी में विश्व हिन्दी उत्सव में बोलते हुए मैनेजमेंट गुरू अरिंदम चौधरी ने कहा था कि प्रबंधन के व्यावहारिक क्षेत्र में न तो अंग्रेजी चलती है, न ही और भाषा, वहाँ तो केवल हिन्दी ही चलती है।

भाषा का संबंध संस्कृति से होता है। इस समय भारत सरकार के विभिन्न संस्थानों विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं स्वयंसेवी संस्थानों की ओर से हिन्दी शिक्षण के लिए परिपक्व ई–लर्निंग पाठ बनाए जा रहे हैं। बहुत सारी वेबसाईट्स हैं, जो अपने प्रखंडों में हिन्दी शिक्षण को वांछित स्थान दे रही हैं। जैसे दूरस्थ शिक्षा परिषद, उच्चतर शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन आदि। पूरी तरह से एक नई सोच को विकसित करने लगे हैं। कम्प्यूटर की तरफ से आज कोई कमी नहीं है। हमारे पास एक से एक अच्छे सॉफ्टवेयर हैं। विकीपीडिया पर निरंतर हिन्दी शिक्षण के लिए काम चल रहा है। हिन्दी के बहुत सारे पोर्टल हिन्दी टाईप की ऑनलाईन विधियाँ सिखाते हैं। वेब पत्रिकाएँ, हिन्दी शिक्षण में एक महत्वपूर्ण रोल अदा कर रही है। आज कार्पोरेट सेक्टर वाले भी हिन्दी सीख रहे हैं व हिन्दी के लोग रख रहे हैं। उनके उत्पादों के विज्ञापन हिन्दी में हैं। आज हिन्दी भाषा के अखबार अंग्रेजी के अखबारों को पछाड़ रहे हैं। यह याद रखना चाहिए कि हिन्दी भाषी क्षेत्र की जनता 40 करोड़ है। हिन्दी फिल्मों, पत्र–पत्रिकाओं, पुस्तकों और हिन्दी संचार माध्यमों की लोकप्रियता बढ़ी है। आज अमेरिका भी मार्केट पर कब्जा करने के लिए अपने लोगों को हिन्दी में प्रशिक्षित कर रहा है। साहित्य पढ़ने वालों के साथ–साथ हिन्दी बोलने वालों की संख्या लगातार बढ़ रही है। दक्षिण में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की हिन्दी परीक्षा में प्रति वर्ष ढाई लाख परीक्षार्थी बैठते हैं। केरल, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश कही भी हिन्दी को लेकर समस्या नहीं है। तमिलनाडु में भी हिन्दी की कक्षाएँ चलती हैं। दक्षिण भारत के मंत्री भी केन्द्र में जाकर हिन्दी भाषा सीखते हैं, क्योंकि हिन्दी के बिना आज कोई राष्ट्रीय स्तर का बड़ा नेता नहीं बन सकता।

(3) निष्कर्ष :

विश्व की प्रमुख संप्रेषणशील भाषा के रूप में हिन्दी उभर रही है। संप्रेषणशील भाषा के रूप में हिन्दी के शिक्षण को गति देने के लिए नई रणनीतियाँ बनानी होगी। इस तरह के किसी भी पाठ्यक्रम में बोलचाल की हिन्दी एवं संस्कृति और भाषा के गठबंधन को केन्द्रीय बिन्दु के रूप में रखना चाहिए। विश्वभर के विश्वविद्यालयों में जनसंचार माध्यमों की मदद लेकर हिन्दी के शिक्षण के नए प्रयोग किए गए हैं। विश्व हिन्दी सम्मलनों और हिन्दी शिक्षण कार्यशालाओं में जो निष्कर्ष और संस्तुतियाँ पेश की जाती हैं। उनके आधार पर संप्रेषणी हिन्दी के पाठ्यक्रम आयोजित करने का प्रयास होना चाहिए। भाषा प्रौद्योगिकी एवं मल्टीमीडिया की मदद से हिन्दी के शिक्षण की सामग्री तैयार करने में विश्व के देशों से सहयोग लिया जा सकता है।

<u>संदर्भ</u> :

(1) मिश्र, केशरीनन्दन (2007) : हिन्दी भाषा संरचना, अलंकार प्रकाशन, इन्दौर। ***(2)*** *पाण्डेय, रामशकल (2005) : नई शिक्षा नीति, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।* ***(3)*** *सिंह, कर्ण (2002) : भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएँ, गोविन्द प्रकाशन।* ***(4)*** *शर्मा, राजकुमारी (2002) : हिन्दी शिक्षण, राधा प्रकाशन।* ***(5)*** *शर्मा, गंगाराम एवं भारद्वाज सुधीर कुमार (2007) : हिन्दी भाषा शिक्षण, एच.पी. भार्गव बुक हाऊस, आगरा।* ***(6)*** *शर्मा, आर.के. (2007) : हिन्दी भाषा शिक्षण, राधा प्रकाशन मंदिर, आगरा।* ***(7)*** *शर्मा, राजीव (2005) : हिन्दी भाषा, देवी अहिल्या प्रकाशन, इन्दौर।* ***(8)*** *शर्मा, शंकरदयाल (2005) : शिक्षा के आयाम, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।* ***(9)*** *शर्मा, शैलेन्द्र : हिन्दी हैं हम (दैनिक भास्कर, (2010 सितम्बर)।*

❁❁